समर्पणम्

यः सर्वभूपजनपूजितपादपद्मः
शौर्यैर्गुणैरखिलभारतभूमिदीपः ।
श्रीमन्महेशकुलपङ्कज-भास्करः श्री—
लक्ष्मीश्वरः स्वयमभून्मिथिलामहीपः ॥
धर्मं च यः समुपदिश्य जनान् समस्तान्
स्थानं जगाम निजमेव विहाय भूमिम् ।
तस्यैव पट्टमहिषी महिलासु धन्या
मान्याऽस्ति सम्प्रति सतीजनशिक्षणार्थम् ॥
सन्त्यज्य या स्वयमशेषसुखानि जीवन्-
मुक्तेव मुक्तपतिभक्तिपराऽत्र काश्याम् ।
विद्या सतामिव सुपात्रजने प्रदानात्
सम्पत् सदा समुपचीयत एव यस्याः ॥
लोकेऽखिलव्यवहृतौ निपुणाऽत्यतीव
सद्धर्मनीतिविषयेऽपि सरस्वतीव ।
पातिव्रतेऽपि निरता सततं सतीव
या शम्भुसेवनपराऽपि च पार्वतीव ॥
या दीनपालनपराऽन्नपराम्बराद्यै—
राद्यैरनुष्ठितपथे पदमादधाना ।
लक्ष्मीरिवेद्धतपसाऽर्चितविष्णुमूर्ति —
र्लक्ष्मीवती जयति सा मिथिलाऽधिराज्ञी ॥
साहाय्यकं समुपलभ्य सदैव यस्या —
श्छात्रालयेऽपि निवसाम्यहमत्र काश्याम् ।
स्वाभीष्टदैवतवदर्च्यपदाम्बुजायै
तस्यै नतः कृतिमिमां च समर्पयामि ॥

श्रीसीताराम झा, चौगमा ।

'भास्कर'मणिमालाया ज्यौतिषमञ्जुलमणिः प्रथमः।
लसतु सतामनवरतं सुमतिमतां कण्ठदेशेऽयम् ॥

भूमिका

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तथा वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥

समस्त वेद के अङ्गों में ज्योतिषशास्त्र श्रेष्ठ कहा गया है। क्योंकि ज्यौतिषशास्त्र से ही भूत, भविष्य और वतमान समय के दृश्य और अदृश्य फल का ज्ञान होता है। उनमें दृश्य विषयफल (ग्रह नक्षत्रों के उदय, अस्त, ग्रहण, योग आदि) तो सिद्धान्त द्वारा गणित द्वारा भूत, भविष्य भी प्रत्यक्ष देखने में आता है। अदृश्य विषय फल (प्रारब्धानुसार जन्म, विद्या, बुद्धि, सुख, दुःख, आय, व्यय, विवाह, सन्तान, जीवन, मरण आदि) भी जन्मकालिक ग्रह और नक्षत्रों को स्थिति अनुसार ही प्राणियों (स्थावर-जङ्गममात्र) को होता है। नहीं तो क्या कारण जो एक ही किस्म की जमीन में एक ही किस्म का बीज यदि कालान्तर करके बोया जाता है तो उनके फलों में भिन्नता देखने में आती है। इसका कारण वही काल है। ग्रह नक्षत्रों की स्थिति से ही काल में भी भिन्नता होती है। नक्षत्र कक्षा के तुल्य २७ विभाग अश्विनी आदि नामों से २७ नक्षत्र और उसी के तुल्य १२ विभाग मेषादि नाम से १२ राशियाँ प्रसिद्ध हैं।

पृथिवीस्थित समस्त वस्तुओं की स्थिति और प्रलय में आकाशस्थ नक्षत्र और ग्रह के बिम्बों से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। परोपकारपरायण हमारे पूज्य महर्षि अपनी सत्यता और तपस्या के बल से-कैसी ग्रह स्थिति में जन्म लेने से किसे किस प्रकार—(शरीर, धन, पराक्रम, सन्तान, विद्या, मित्र, शत्रु, स्त्री, आयु, धर्म, कर्म, आय, व्यय आदि) फल मिला वह अत्यन्त परिश्रम के साथ परीक्षा कर हम लोगों के उपकारार्थ शास्त्र बना गये। परञ्च काल ही की महिमा से वे ग्रन्थ लुप्तप्राय हो गये और हो रहे हैं। फिर भी हम लोगों के टूटे फूटे भाग्य के अनुसार साक्षात् त्रिकालज्ञ महर्षियों के बनाये हुए ग्रन्थों में

से कुछ उपलब्ध भी हैं। जिनमें फलित—ज्यौतिष के रत्नभूत महर्षि भगवान् जैमिनिप्रणीत "उपदेशसूत्र" भी २ अध्याय दृष्टिगोचर हो रहा है। इस ग्रन्थ में अन्य जातक ग्रन्थों से-बहुत विलक्षणता है—(अर्थात् राशि और ग्रहों की दृष्टि-फल आत्मादि कारक द्वारा फल-कथन, पद और उपपद से फल, चर स्थिर आदि दशाफल, अनेक प्रकार से आयुर्दाय विचार वर्णित है)। इस ग्रन्थ में छोटे छोटे सूत्रों में बहुत से आशय होने के कारण लोगों को बहुत कठिनता मालूम पड़ती है। यद्यपि इस ग्रन्थ पर नीलकण्ठ केशव आदि अनेक प्राचीन आचार्यों की टीका और कारिका भी है। जिनसे लोगों को बहुत उपकार भी हुआ। तथापि उन टीका और कारिकाओं में न जाने लेखक मुद्रक आदि जनों के दोष या किस तरह अनेक स्थलों में महर्षि की प्रतिज्ञा के विरुद्ध अर्थ प्रतिपादित है। इसलिये अनेक विद्यार्थियों की प्रार्थना से तथा काशी के सुप्रतिष्ठित प्रसिद्ध "मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स" पुस्तकालयाध्यक्ष बाबू श्रीजगन्नाथप्रसाद यादव तथा बाबू श्रीबैजनाथ प्रसाद यादवजी के अनुरोध से—मैंने "महर्षि जैमिनि जी" की प्रतिज्ञा के अनुकूल सरल संस्कृत और भाषा में अर्थ तथा सर्वसाधारण के उपकारार्थ कठिन स्थलों के उदाहरण सहित—"तत्त्वादर्श" नामक तिलक बनाकर उक्त पुस्तकालयाध्यक्ष महानुभाव को ही सादर समर्पण कर दिया। जिन्होंने ज्यौतिष-प्रेमियों के उपकारार्थ यत्नपुरस्सर इस ग्रन्थ को मुद्रित करवाकर प्रकाशित किया है। यदि इससे किसी का कुछ भी उपकार होगा तो मेरा तथा प्रकाशक का परिश्रम सफल समझा जायगा। विशेष सहृदय दैवज्ञों से नम्र निवेदन यह है कि इसमें मनुष्य धर्मवश जो कुछ त्रुटि रह गई हो उसे सुधार कर मुझे सूचित करें तो मैं उनका कृतज्ञ बनूँगा। इति।

"स्खलनं गच्छतः क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥"

विनीत—

श्रीसीताराम झा, चौगमा।

तृतीय संस्करण की भूमिका।

——:◈:——

श्रीविश्वनाथ जी की कृपा से इस 'तत्त्वादर्श' नामक जैमिनि सूत्र टीका के तृतीय संस्करण का अवसर प्राप्त हुआ। प्रथम संस्करण में जो कुछ त्रुटि रह गई थी वे सब यथामति इसमें सुधार दी गई है।

इस टीका में महर्षि जैमिनि के सूत्र और वृद्धाचार्यों की कारिका में एक वाक्यता पुरस्सर ही अर्थ और उदाहरण लिखे गये हैं। अथवा इसकी कुछ भी प्रशंसा करना अनवसर ही है। क्योंकि—

"वदति स्वयमेवाग्लं को विक्रेता निजं दधि।
अतोऽत्रत्यान् गुणान् दोषान् स्वयं ज्ञास्यन्ति पण्डिताः॥"

अतः केवल सहृदय विवेकि वृन्दों से नम्र निवेदन है कि—यदि मनुष्य धर्म वश फिर भी कुछ त्रुटि रह गई हो, उसे संशोधित कर हमें सूचना दें तो हम पुनः अग्रिम संस्करण में सुधार कर उनके चिरकृतज्ञ बनें॥ इति॥

निवेदक—
टीकाकार और प्रकाशक।

जैमिनिसूत्रस्य विषयसूची

प्रथमाध्याय प्रथमपाद

❀ इति ❀

अथ जैमिनिसूत्रम् ।

सोदाहरण–तत्त्वादर्शसहितम् ।

प्रणम्य बुद्धिप्रदढुण्ढिराजं श्रीविश्वनाथं जगदम्बिकां च ।
करोम्यहं बालमनःप्रतुष्ट्यै सोदाहृतिं जैमिनिसूत्रटीकाम् ॥

अथात्र तावद्ग्रन्थकारो महर्षिजैमिनिर्वस्तुनिर्देशरूपमङ्गलमाह—

उपदेशं व्याख्यास्यामः ॥१॥

सं०—उः (शङ्करः) तस्य पदं स्थानमिति 'उपदं' तस्मिन् उपदे (काश्यामित्यर्थः) शं (लोककल्याणकारकं शास्त्रं) व्याख्यास्यामः (कथयिष्यामः) । अथवा उपदिश्यते प्रतिपाद्यते पूर्वजन्मार्जितशुभादिकर्मानेनेति 'उपदेशः' जातकशास्त्रविशेषस्तं व्याख्यास्यामः ।

भा०—महर्षि जैमिनि कहते हैं कि—*हम काशी में स्थित होकर लोककल्याणकारक जातक शास्त्र को कहते हैं ।

अथ स्वमतेन राशीनां दृष्टिमाह—

अभि पश्यन्त्यृक्षाणि ॥२॥ पार्श्वभे च ॥३॥

सं०—ऋक्षाणि (राशयः) अभिपश्यन्ति (स्वसम्मुखस्थराशिं विलोकयन्ति) ॥ पार्श्वभे (स्वपार्श्वद्वयस्थिते भे राशी) च पश्यन्ति ॥

भा०—हर एक राशि अपनी सम्मुखस्थित राशि को देखती है । तथा अपने दोनों पार्श्व (दक्षिण और वाम तरफ) की दो राशियों को भी देखती है ।

---

* महर्षि जैमिनि ने इस ग्रन्थ को काशी में ही बनाया ऐसी परम्परा जनश्रुति है ।

इस प्रकार प्रत्येक राशि की तीन तीन राशियों पर दृष्टि होती है।
स्पष्टार्थं सरलपद्यानि—

स्वस्थानाच्चरराशीनामष्टमः सम्मुखस्थितः ।
पञ्चमैकादशौ पार्श्वस्थितौ ज्ञेयौ विपश्चिता ॥
स्थिराणां सम्मुखः षष्ठः पार्श्वस्थौ त्रिनवोन्मितौ ।
स्वस्थानाद् द्विस्वभावानां सप्तमः सम्मुखः स्मृतः ॥
चतुर्थदशमौ पार्श्व-राशी प्रोक्तौ मनीषिभिः ।
स्वस्वसम्मुखपार्श्वस्थ-राशीन् पश्यन्ति राशयः ॥"

अथवा दृष्टिबोधक सरलप्रकार—

चरो घन विना स्थाण्नून् स्थिरश्चान्त्यं विना चरान् ।
द्विस्वभावो विनात्मान द्विस्वभावान् प्रपश्यति ॥

अर्थ—चरराशि अपने से द्वितीय स्थिर को छोड़ कर बाकी तीनों स्थिर को देखती है। तथा स्थिर राशि अपने से १२ वें चर को छोड़ कर तीनों चर को देखती है। तथा द्विस्वभाव राशि अपने को छोड़ कर तीनों द्विस्वभाव को देखती है।

अथ ग्रहदृष्टिमाह—

तन्निष्ठाश्च तद्वत् ॥ ४ ॥

सं०—तन्निष्ठाः तत्तद्राशिस्थिता ग्रहाश्चापि तद्वत् राशिवत् (संमुखपार्श्व-द्वयस्थराशीन् तद्गतान् ग्रहांश्च) पश्यन्ति ॥

भा०—चरादि राशिस्थित ग्रह भी राशि के समान ही (संमुख तथा पार्श्वस्थित राशियों को और तद्गत ग्रहों को) देखते हैं।

(दृष्टि चक्र पृष्ठ ३ में देखिए)

अथ दृष्टिविचारोदाहरण—

दृष्टिचक्र कुण्डली में प्रत्येक राशि से तीन तीन राशियों पर दृष्टि रेखाएँ गई हैं, यथा मेष (१) राशि से सिंह (५) वृश्चिक (८) कुम्भ (११) पर दृष्टि सूत्र गये हैं, अतः तीनों राशियों पर मेष की दृष्टि हुई।

दृष्टिचक्र—
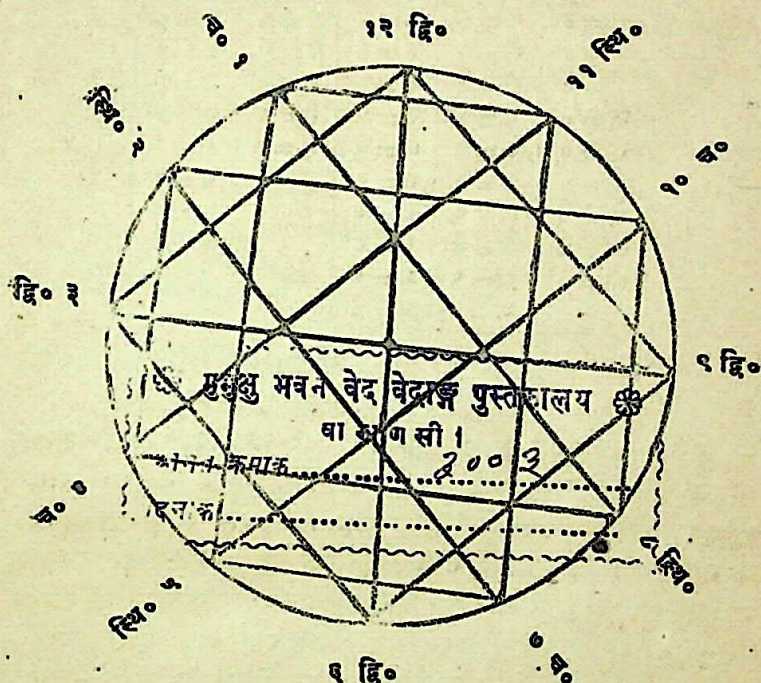
उनमें वृश्चिक (८) सम्मुख तथा सिंह और कुम्भ पार्श्वस्थित हुए इसी प्रकार हर एक राशि से समझना।

अथ—विशेष ध्येय विषय—

"क-ट-प-य-वर्गभवैरिह ।पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः ।
नि-ञि-च-शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम् ॥"

अर्थ—इस ग्रन्थ में कवर्ग, टवर्ग, पवर्ग, यवर्ग के अक्षरों से (राशि तथा भाव की संख्या जानने के लिये) अङ्कों का ग्रहण होता है। तथा न, ञ और केवल स्वर (अ, आ इत्यादि) से शून्य का ग्रहण किया जाता है।

यथा अङ्कज्ञानार्थचक्र—

अ = ०	क = १	ट = १	प = १	य = १
इ = ०	ख = २	ठ = २	फ = २	र = २
उ = ०	ग = ३	ड = ३	ब = ३	ल = ३
ऋ = ०	घ = ४	ढ = ४	भ = ४	व = ४
ऌ = ०	ङ = ५	ण = ५	म = ५	श = ५
ए = ०	च = ६	त = ६		ष = ६
ऐ = ०	छ = ७	थ = ७		स = ७
ओ = ०	ज = ८	द = ८		ह = ८
औ = ०	झ = ९	ध = ९		
	ञ = ०	न = ०		

तथा जहाँ पिण्ड (संयुक्त) अक्षर हो वहाँ अन्त्य अक्षर से अङ्क का ग्रहण होता है।

यथा—'स्व' इसमें अन्तिम वर्ण 'व' यवर्गीय चतुर्थ अक्षर है इसलिये 'स्व' से ४ का ग्रहण होता है। इस प्रकार अङ्कों से संख्या यदि १२ से अधिक हो तो १२ से भाग देकर शेष से संख्या का ज्ञान करना। यथा 'दार' इसमें टवर्ग से गिनने से द=८; और यवर्ग में र=२ तथा "अङ्कानां वामतो गतिः" इस प्रकार न्यास करने से दार=२८ इसको १२ से तष्टित करने पर शेष ४ रहा अतः 'दार' शब्द से ४ चतुर्थभाव या राशि का ज्ञान हुआ। ग्रन्थकार ने भी आगे—"स्वनक्षत्रवर्णा भावा राशयश्च" १।१।३३ यह सूत्र कहा है।

अथार्गलायोगमाह—

दार-भाग्य शूल-स्थार्गला निध्यातुः ॥ ५ ॥

*** रिष्फ-नीच-कामस्था विरोधिनः ॥ ७ ॥**

सं०—निध्यातुर्द्रष्टुः (ग्रहस्य राशेर्वा) दार (४) भाग्य (२) शूल (११) स्था चतुर्थ-द्वितीयैकादशस्थानस्थिता अर्गला स्यात्। चतुर्थादिस्थाननिष्ठेषु ग्रहेष्वर्गला भवतीत्यर्थः। तथा—दारादिस्थानार्गला कर्तॄणां क्रमेण-रिष्फ-(१०) नीच-(१२)

*पञ्चमसूत्र के साथ सम्बन्ध होने के कारण पहिले सप्तमसूत्र लिखा गया है।

कामस्था- (३) दशम-द्वादश-तृतीयस्था ग्रहा विरोधिनोऽर्गलाबाधका भवन्ति । सा चार्गला "अधिकैर्ग्रहैरुत्तमा, द्वाभ्यां मध्यमा, एकेनाल्पेति" केचित् कथयन्ति ॥

भा०—विचाराश्रयीभूत राशि अथवा ग्रह से ४, २, ११, इन स्थानों में ग्रह हो तो अर्गला (योगविशेष) होती है। तथा १०, १२, ३ इन स्थानों में ग्रह हो तो क्रम से चतुर्थादि स्थानोत्पन्न अर्गला के बाधक होते हैं।

यथा—४र्थ स्थान में ग्रह होने से अर्गला होती है, यदि दशम में भी ग्रह हो तो नहीं होती। एवं द्वितीय में ग्रह रहने से अर्गला होती यदि १२ में बाधक ग्रह न हो। तथा ११ में ग्रह रहने से अर्गला होती है यदि ३ तृतीय में बाधक न हो। राशि से जितने आगे अर्गला स्थान रहता है उतने ही पीछे बाधक स्थान होता है।

अथ बाधकग्रहापवादमाह—

न न्यूना विबलाश्च ॥ ८ ॥

सं०—दाराद्युपरोक्तार्गलस्थानस्थ-ग्रहापेक्षया रिष्फादिबाधकस्थानस्थग्रहा न्यूना अल्पसंख्यकाः, विबला वक्ष्यमाणबलरहिताश्च विरोधिनो बाधका न भवन्तीत्यर्थः ।

भा०—अर्गला स्थान (४, २, ११) स्थित ग्रह की अपेक्षा बाधक स्थान (१०, १२, ३,) स्थित ग्रह अल्पसंख्यक हो अथवा निर्बल हो तो अर्गला के बाधक नहीं होते। अर्थात् अर्गला कारक ग्रह से बली और संख्या में तुल्य हों वा अधिक हो तभी बाधक होते हैं, अन्यथा नहीं।

राशिबोधक प्राचीनोक्ति—

"अग्रहात् सग्रही ज्यायान् सग्रहेष्वधिकग्रहः ।
साम्ये चर-स्थिर-द्वन्द्वाः क्रमात् स्युर्बलशालिनः ॥"

अर्थ—अग्रह राशि से सग्रह राशि बलवती होती है। सग्रह में भी जिसमें अधिक ग्रह संख्या हो वह बलवती होती है। यदि ग्रह संख्या तुल्य हो तो चर से स्थिर, और स्थिर से भी द्विस्वभाव राशि बलवती समझी जाती है।

विशेष—"शुभार्गले धनसमृद्धिः १।३।२३" इत्यादि सूत्र आगे कहे हैं। वहाँ प्रतिबन्धकरहित अर्गला शुभ होती, तथा प्रतिबन्धक स्थान-स्थित ग्रह रहने से अशुभ अर्गला होती है। न कि शुभ ग्रह और पाप ग्रहों से ही शुभाशुभ जाना जाता।

अर्थात् प्रतिबन्धक स्थान में ग्रह-संख्या अधिक किंवा प्रबल हो तो विपरीत (अशुभ) अर्गला होती है। यथा—वृद्धकारिका—

"भय (२) पुण्य (११) विना (४) भावाद् द्रष्टुराहुः शुभार्गलम्।
स्फुट (१२) गो (३) ज्ञेय (१०) भावात्तु विपरीतार्गलं विदुः॥"

तथा च—

"यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले।
तेन द्रष्ट्रेक्षितं लग्नं प्राबल्यायोपकल्प्यते॥
यदि पश्येद्ग्रहस्तत्र विपरीतार्गलस्थितः॥" इति॥

यदि शुभग्रह-पापग्रहकृत ही शुभ, पाप अर्गला होती तो "शुभार्गले शुभः पापो वा ग्रहस्तिष्ठेत्" ऐसा पद नहीं कहते। यह सब मानते हैं कि पापग्रहकृत शुभार्गला से शुभग्रहकृत शुभार्गला विशेष शुभ होती है।

यथा—वृद्धकारिका—

"सार्गले चैव तत्रापि बह्वर्गलसमागमे।
शुभग्रहार्गले तत्र तत्राप्युच्चग्रहार्गले" इत्यादि॥

अथ पुनरर्गलातत्प्रतिबन्धकस्थानमाह—

प्राग्वत् त्रिकोणे॥ ९॥ विपरीतं केतोः॥ १०॥

सं०—त्रिकोणे पञ्चमनवमयोः प्राग्वत् पूर्वोक्तसूत्रवत् अर्गलातत्प्रतिबन्धकादिकं ज्ञेयम्। पञ्चमे ग्रहसत्त्वेऽर्गला, नवमे तत्प्रतिबन्धः, बाधकस्य न्यूनत्वे, निर्बलत्वे न प्रतिबन्धकत्वमित्यर्थः। केतोस्तमोग्रहस्यार्गलातद्बाधकस्थानं विपरीतं विलोमं ज्ञेयम्। नवममर्गलास्थानं, पञ्चमं तद्बाधकस्थानम्। रिष्फ (१०) नीच (१२) कामा (३) अर्गलास्थानानि। दार (४) भाग्य (२) शूलानि (११) तद्बाधकस्थानानीत्यपि ज्ञेयम्।

भा०—पञ्चम नवम स्थान में पूर्ववत् अर्गला और प्रतिबन्धक

समझना। यथा—विचाराश्रयीभूत राशि अथवा ग्रह से पञ्चम में ग्रह रहे तो अर्गला तथा नवम में ग्रह उसका प्रतिबन्धक होता है। केतु किंवा राहु के (विलोम गति होने से) अर्गला और प्रतिबन्धक स्थान विपरीत (विलोम) समझना—अर्थात् केतु के १०, १२, ३ तथा ९ ये अर्गला स्थान और ४,२,११ और ५ क्रम से प्रतिबन्धक स्थान हैं। कोई केतु के लिये केवल त्रिकोण में ही अर्गला और प्रतिबन्धक विपरीत मानते हैं। परञ्च वह बहुसम्मत नहीं है।

अथ निराभासा (अप्रतिबन्धका) र्गलामाह—

कामस्था तु भूयसा पापानाम् ॥ ६ ॥

सं०—पापानां पापग्रहाणां भूयसां बाहुल्येन (त्रिसख्याधिक्येन) कामस्था ३ तृतीयस्थानस्था अर्गला भवति। "भूयांस्तु बहुतरे पुनरर्थे चेति" मेदिनी कोषः। एतेन तृतीयस्थाने त्र्यधिकैः पापग्रहैरर्गला भवति, न तु द्वाभ्यामेकेन वा पापेनेत्यर्थः। तथा चेदमर्गला निष्प्रतिबन्धका भवति। एतत्प्रतिबन्धकस्थानं नास्तीत्यर्थः। पापग्रहास्तु "क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः, राहुकेतू चैते पापग्रहाः।

भा०—विचाराश्रयीभूत राशि वा ग्रह से तृतीय स्थान में ३ से अधिक पापग्रह हों तो अर्गला योग होता है।

इस (तृतीयस्थानोत्पन्न) अर्गला का प्रतिबन्धकस्थान नहीं है, अतएव यह सर्वदा निराभासार्गला कहलाती है। निराभासार्गला, शुद्धार्गला शुभार्गला ये पर्यायवाचक शब्द हैं। तथा साभासार्गला, विपरीतार्गला, पापार्गला ये एकार्थबोधक शब्द हैं। क्षीण चं०सू०मं०श०के०रा० पापयुत बुध ये पापग्रह हैं। प्रकरण विशेष में रवि और केतु भी शुभ होते हैं।

द्रष्टा से अर्गलास्थानबोधक चक्र—

४	२	११	५	३	अर्गला स्थान
|	|	|	|	|	|
१०	१२	३	९	०	बाधक स्थान
मिश्रार्गला				शुद्धार्गला	×

निरर्गल स्थान १,६,७,८ ।

अथोदाहरणम्—शुभवीरविक्रमसंवत्सरे १९१५० शालिवाहनशके १७८० फाल्गुनकृष्णषष्ठ्यां घट्यादि ९।२ तदुपरि सप्तम्याम्, विशाखा-नक्षत्रे घ० ५०।४८ ध्रुवयोगे घ० २२।३२ तदुपरि व्याघाते बुधवासरे सूर्योदयादिष्टघ० ।४०।३६ एतस्मिन् समये कस्यचिज्जन्माऽभूत् । अत्र दिनमानम् २८।१४ रात्रिमानम् ३१।४६ मिश्रमानम् ४४।७ रेखातः पूर्व-देशान्तरयोजनानि १२७ स्वदेशे पलभा ६। चरखण्डानि ६०।४८।२०। तात्कालिका अयनांशाः २०।२३।५३।

जन्म लग्नकुण्डली—
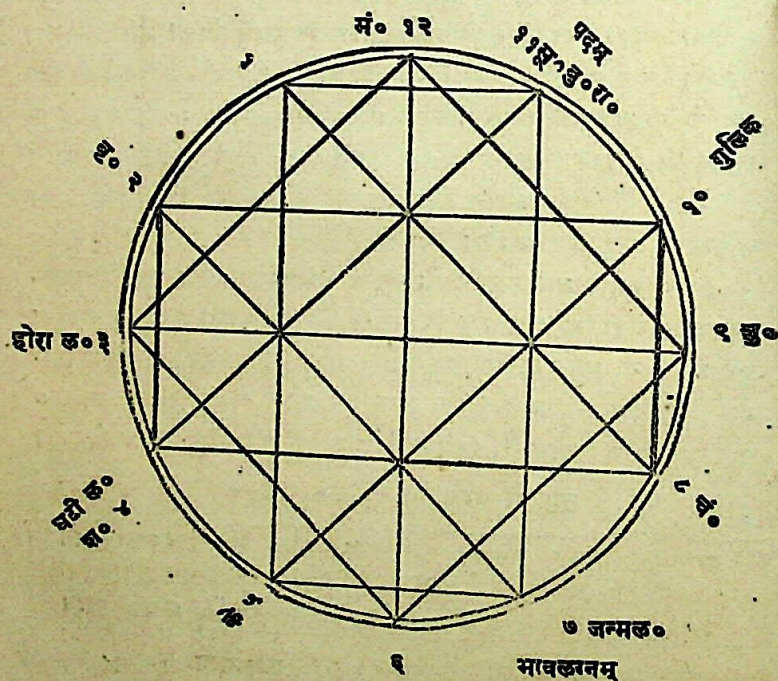
तात्कालिकाः सगतिकाः स्पष्टग्रहाः ।

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	के०	लङ्कोदयपलानि			स्वदेशोदयपलानि		
१०	७	११	१०	१	८	३	४	मे०	मी०	२७८	मे०	मि०	२१८
१२	१	२४	७	१९	२५	१८	९	वृ०	कु०	२९९	वृ०	कु०	२४१
१७	५	२७	१७	५७	४३	८	१५	मि०	म०	३२३	मि०	म०	३०३
२८	१५	५८	१९	३०	१८	१६	५९	क०	ध०	३२३	क०	ध०	३४३
६०	७६२	४३	१०८	३	६१	४	३	सिं०	वृ०	२९९	सिं०	वृ०	३४७
२४	४२	७	५०	२२	१९	२९	११	क०	तु०	२७८	क०	तु०	३३८
			अ०										

तन्वादिद्वादशभावाः ससन्धयः—

	त०	ध०	स.	सु.	सु.	रि.	जा.	मृ.	ध.	क.	आ.	व्य.
भावाः	६	७	८	९	१०	११	००	१	२	३	४	५
	१८	१९	२०	२१	२०	१९	१८	१९	२०	२१	२०	१९
	३४	३४	३३	३३	३३	३४	३४	३४	३३	३३	३३	३४
	४६	१६	४६	१५	४५	१५	४६	१६	४६	१५	४५	१५
सन्धयः	७	८	९	१०	१०	००	१	२	३	४	५	६
	४	५	६	६	५	४	४	५	६	६	५	४
	४	४	३	३	४	४	४	४	३	३	४	४
	३१	१	३०	३०	०	३०	३१	१	३०	३०	०	३०

भावलग्न, होरालग्न, घटीलग्न गुलिक-आदि का उदाहरण सहित आनयन आगे किया गया है ।

अथ अर्गलाविचारोदाहरण—यथा–तुला राशि से द्वितीय (अर्गला-स्थान) में चन्द्रमा है, उसके बाधक द्वादश (कन्या) में कोई ग्रह नहीं है अतः चन्द्रमा अर्गलाकारक हुआ। तथा तुला से पञ्चम (कुम्भ) में सूर्य. बु. रा. हैं उसके बाधक स्थान नवम (मिथुन) में कोई ग्रह नहीं है अतः उक्त तीनों ग्रह अर्गलाकारक हुए। तथा तुला से (११) अर्गलास्थान सिंह में केतु है, किन्तु उसके प्रतिबन्धक स्थान तृतीय धनु में शुक्र बली है, इसलिये केतु अर्गलाकारक नहीं हुआ। इसी प्रकार सब राशियों पर अर्गला विचार करना। आगे चक्र देखो।

जहाँ अर्गलाकारक और प्रतिबन्धक ग्रहों की संख्या तुल्य हो वहाँ राशियों का बल, और यदि राशियों के बल तुल्य हों वहाँ ग्रहों का नैसर्गिक बल देखा जाता है। वास्तव में नैसर्गिक बल में–श. शु. बृ. बु. मं. चं. सू. ये क्रम से (यथोत्तर) बली हैं। कोई–"श-कु-बु-गु-शु-च-राद्या वृद्धितो वीर्यवन्तः" इस बृहज्जातक के वचन से बल ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार ग्रह से भी अर्गला समझना—जैसे सूर्य से द्वितीय (अर्गला) स्थान में मङ्गल है। उसके प्रतिबन्धक (द्वादश) स्थान में ग्रहाभाव है इसलिये मङ्गल अर्गलाकारक हुआ। तथा सूर्य से चतुर्थ स्थान में स्थित बृहस्पति से उसके प्रतिबन्धक स्थान (१०) में चन्द्रमा प्रबल है अतः चतुर्थस्थानीय अर्गलायोग नहीं हुआ। तथा एकादशस्थान में शुक्र है उसके प्रतिबन्धक तृतीय में कोई ग्रह नहीं है इसलिये शुक्र अर्गलायोग कारक हुआ। एवं सर्वत्र समझना ॥

अथ राश्यर्गलाचक्रम्—

तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
सू. बु. रा. च.	सू. रा. मं. शु.	मं.	सू. बु. रा. बृ.	शु. मं.	
मे.	**वृ.**	**मि.**	**क.**	**सि.**	**क.**
सू. बु. श. रा.	म.		बृ. के.	शु.	शु.

ग्रहार्गलाचक्रम्—

ग्र.	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.
अर्गलाकारक	मं. शु.	सू. बु. शु. रा. मं.	× ×	म. शु.	× मं. ×	मं.	बृ. के.		श.

अथ भावलग्न—होरालग्न-घटीलग्नायनयप्रकारो मदुक्तः—

षड्भिरर्कैः खरामैश्च स्वेष्टघट्यो हताः पृथक्।
फलमंशादिकं योज्यं सदा तत्कालिके रवौ ॥
भाव-होरा-घटीसंज्ञ-लग्नानीति पृथक् क्रमात्।
केचित्तु–"विषमे लग्ने लग्ने योज्य च तत्फलम् ॥

समे लग्ने रवौ तच्च फलं योज्यं'' मितीरितम् ।
तन्न युक्तं यतः सूर्योदयाल्लग्नं प्रवर्तते ॥

अर्थ—इष्ट घटी को ३ तीन स्थान में रखकर क्रम से ६,१२,३० से गुनाकर अंशादि फल को पृथक् पृथक् तात्कालिक स्पष्ट सूर्य में जोड़ने से क्रम से भावलग्न, होरालग्न तथा घटीलग्न होते हैं। किसी ने "विषम लग्न में अंशादि फल को लग्न में तथा सम लग्न हो तो अंशादि फल को सूर्य में जोड़ना" ऐसा कहा है। किन्तु वह युक्त नहीं है, कारण-यह कि इष्ट काल के वश हर एक लग्न की प्रवृत्ति सूर्योदय से ही होती है। अतः सर्वदा सूर्य ही में जोड़ना युक्त है।

भावलग्नोदाहरण—जन्मेष्ट घटी ४०।३६ इसको ६ से गुना करने से अंशादि २४०°।२१६' कला में ६० का भाग देकर अंश में जोड़ने से २४३°।३६' अंश में ३० का भाग देकर राश्यादि फल ८।३°।३६'।०" को तात्कालिक स्पष्ट सूर्य १०।१२°।५७'।३८" में जोड़ने से ६।१६।३३।३८ यह भावलग्न हुआ।

होरालग्नोदाहरण—इष्ट घटी ४०।३६ को १२ से गुना करने से अंशादि ४८७°।१२' अंश में ३० से भाग देकर राश्यादि ४।७°।१२* इसको स्पष्ट सूर्य १०।१२।५७।३८ में जोड़ने से होरालग्न=२।२०।९।३८ हुआ।

घटीलग्नोदाहरण—इष्ट ४०।३६ को ३० से गुनाकर अंशादि १२१८।० में ३० से भाग देकर राश्यादि ४।१८°।०' को सूर्य १०।१२°। ५७'।३८" में जोड़ने से ३।०।५७।३८ यह घटीलग्न हुआ।

तथा चोक्तम्—

"सूर्योदयं समारभ्य घटिकानां तु पञ्चकम् ।
प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नं तदुच्यते ॥
तथा सार्धद्विघटिकामितात् कालाद्विलग्नभात् ।
प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ॥'' इत्यादि स्पष्टार्थम् ।

* राशि के स्थान में १२ से अधिक होने पर १२ से तष्टित कर शेष लिया जाता है।

अथ गुलिकज्ञानप्रकारो वृद्धोक्तः—

दिवसानष्टधा भक्त्वा वारेशाद् गणयेत् क्रमात् ।
अष्टमोंऽशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ॥
रात्रिमप्यष्टधा भक्त्वा वारेशात् पञ्चमादितः ।
गणयेदष्टमः खण्डो निष्पत्तिः परिकीर्तितः ॥
शन्यंशो गुलिकः प्रोक्तस्तदिष्टवशतस्तनुः ।" इत्यादि ॥

अर्थ—दिन में इष्ट काल हो तो दिनमान को ८ आठ भाग करके इष्ट दिनपति के क्रम से सातो ग्रह सात खण्डों के स्वामी होते हैं। आठवाँ खण्ड के स्वामी नहीं होता है। तथा जिस खण्ड के स्वामी शनि हो वह समय गुलिक कहलाता है।

एवं यदि रात्रि में इष्ट काल हो तो रात्रिमान को ८ भागकर दिनेश से पञ्चम ग्रह आदि करके क्रम से सात खण्डों के स्वामी होते हैं। अष्टम खण्ड निष्पति होता है। शनि का भाग गुलिक होता है। उस गुलिक इष्ट पर से लग्न साधन करे वह लग्न मान्दी, तथा गुलिक कहलाता है।

उदाहरण—यथा उपरोक्त उदाहरण में बुधवार–रात्रि में इष्टकाल है अतः रात्रमान ३१।४६ का अष्टमांश ३।५८।१५ घट्यादि एक खण्ड का मान हुआ। तथा बारेश बुध है इसलिये बुध से पञ्चम (रवि) से गिनने से ७ सप्तम खण्ड शनि का हुआ। वही गुलिक हुआ।

रव्यादिवारे गुलिकखण्डज्ञानम्—

दिवा सप्ताङ्गपञ्चाब्धित्रिद्व्येकप्रमिता रवेः (७।६।५।४।३।२।१)।
खण्डा रात्रौ तथा त्रिद्विधराद्रयङ्गशराब्धयः (३।२।१।७।६।५।४).

अर्थ—दिन में इष्टकाल हो तो रव्यादि दिनों में क्रम से ७।६।५।४।३।२।१ ये गुलिक के खण्ड की संख्या होती है। तथा रात्रि में क्रम से रव्यादिवारों में ३।२।१।७।६।५।४ ये गुलिक के खण्ड की संख्या होती है।

अथ खण्डतो गुलिकारम्भकालानयनप्रकारो मदीयः—

गुलिकस्यैतखण्डेन दिने दिनमितिं तथा ।
रात्रौ रात्रिमितिं हन्यादष्टभिर्भागमाहरेत् ॥

गुलिकारम्भकालोऽसौ लब्धिर्दिनगतो दिने ।
रात्रौ रात्रिगतो ज्ञेयस्तदग्रे गुलिकः स्फुटः ॥
गुलिकस्यान्तकालः स्यादेवं तत्खण्डसम्भवः ।
गुलिकेष्टवशाल्लग्नं मान्दिसंज्ञं तदुच्यते ॥

अर्थ—इष्ट दिन में दिनमान को गुलिक के गत खण्ड से गुना करके उसमें ८ से भाग देने से लब्धि सूर्योदय से गुलिकारम्भकाल होता है। तथा रात्रि में रात्रिमान को गुलिक के खण्ड से गुनाकर उसमें ८ का भाग देने से लब्धि (रात्रिगत) को दिनमान में जोड़ने से गुलिकारम्भ-काल होता है। इसी प्रकार गुलिकेष्ट खण्ड पर से गुलिक का अन्त-काल होता है। इन दोनों के मध्य में गुलिककाल समझना। यदि गुलिककाल में इष्ट समय हो तो उस पर से लग्नानयन रीति से लग्न बनाना वही गुलिक तथा मान्दी कहलाता है।

उदाहरण—बुधवार रात्रि में इष्टकाल है इसलिये रात्रिमान ३१।४६ को गुलिक के गत खण्ड ६ से गुना कर १९०।३६ इसमें ८ का भाग देकर लब्धि (२३।५०) को दिनमान में जोड़ने से गुलिकारम्भकाल ५२।४ हुआ॥ एवं रात्रिमान को बुध की रात्रि के गुलिकेष्ट खण्ड ७ से गुना करने से २२२।२२ इसमें ८ का भाग देने से २७।४८ यह रात्रिगत इष्ट हुआ, इसको दिनमान २८।१४ में जोड़ने से ५६।२ घट्यादि गुलि-कान्तकाल हुआ।

अब इष्टकाल ४०।३६ और यदि गुलिककाल ५६।२ है तो इन दोनों के घट्यादि अन्तर १५।२६ से जन्मलग्नकालिक सूर्य १०।१२।५७।३८ में चालन देकर गुलिकेष्टकालिक सूर्य १०।१३।१३।११ हुआ। इस पर से "तत्काले सायनार्कस्य" इत्यादि विधि से गुलिकलग्न = ९।१४।१७।५३

लग्नानयनप्रक्रिया—गुलिकेष्टकाल ५६।२ को ६० में घटाकर शेष ३।५८ को इष्टकाल मानकर भुक्त प्रकार से लग्नानयन में सुगमता के हेतु सूर्य १०।१३।१३।११ में अयनांश २०।२३।५३ जोड़ने से सायन सूर्य ११।३।३७।४ इसके भुक्तांश ३।३७।४ को मीन के स्वदेशोदय २१८

से गुनाकर उसमें ३० का भाग देकर लब्ध शुक्रादि २६।१७।२१ इसको इष्टकाल के पल २३८ में घटाने से शेष २११।४२।३९ इसमें गत राशि कुम्भ का मान २५१ नहीं घटता इसलिये अशुद्ध कुम्भ (११) हुआ। अतः उपरोक्त शेष २११।४२।३९ को ३० से गुनाकर ६३५१।१९।३० इसमें अशुद्ध (कुम्भ) के उदय २५१ से भाग देकर अंशादि २५।१८।१४ को अशुद्ध संख्या ११ राशि में घटाने से १०।४।४१।४६ इसमें अयनांश २०।२३।५३ घटाने से ९।१४।१७।५३ यह गुलिकलग्न हुआ। इसी को मान्दीलग्न भी कहते हैं॥

अथ फलविशेषप्रतिपादनार्थं चरकारकानाह—

आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगः सप्तानामष्टानां वा ॥११॥

स ईष्टे बन्धमोक्षयोः ॥१२॥

सं०—सूर्यादिशन्यन्तानां सप्तानां, वा (मतान्तरेण) सूर्यादिराह्वन्तानामष्टानां मध्ये कलादिभिः (कलाया आदयोंऽशास्तैः) अंशादिभिरधिको नभोगो ग्रह आत्मा (आत्मकारकः) स्यात्। स आत्मकारको बन्धमोक्षयोः दुःखसुखयोः ईष्टे समर्थो भवति, नीचारिपापसम्बन्धाद् दुःखदायकः, स्वोच्चमित्रादिसम्बन्धात्सुखदायको भवतीत्यर्थः। तथा चोक्तम्—

"नीचारिक्रूरसम्बन्धाद् बन्धकृत् स्वदशास्वयम्।
सुहृत्स्वाम्योच्चसम्बन्धाज्जनानां मोक्षदायकः ॥"

तथा च—

"आत्मा सूर्यादिखेटानां मध्ये त्वंशाधिको ग्रहः।
अंशसाम्ये कलाधिक्यात् तत्साम्ये विकलाधिकः॥
बुधे राशिकलाधिक्याद् ग्राह्यो नैवात्मकारकः।
अंशाधिकः कारकः स्यादल्पभागोन्त्यकारकः॥
मध्यांशो मध्यखेटः स्यादुपखेटः स एव हि।
विलोमगमनाद्राहोरंशाः शुद्धाः खवह्नितः ॥" इति स्पष्टार्थाः।

भा०—"ग्रन्थकार के मत से" सूर्य से शनिपर्यन्त ७ ग्रहों में दूसरे के मत से राहुपर्यन्त ८ ग्रहों में-जिसके अंश अधिक हों वह आत्मकारक

होता है। तथा वह (आत्मकारक) दुःख तथा सुख देने में समर्थ होता है। अर्थात् नीच, पापग्रह आदि के सम्बन्ध से अपनी दशा में दुःख, तथा उच्च मित्रादि के सम्बन्ध से सुख देता है।

विशेष—ग्रह किसी भी राशि में हों जिसके अंश अधिक हों वही आत्मकारक होता है। यदि अंश बराबर हों तो उनमें जिसकी कला अधिक हो, कला की भी समता होने पर जिसकी विकला अधिक हो वह आत्मकारक होता है। उसमें भी समता हो तो बलवान आत्मकारक होता है। इसी प्रकार अन्य कारकों में भी समझना। तथा राहु और केतु के अंश तुल्य होने के कारण इन दोनों में जो बड़ा हो वह कारक होता है। विपरीत गति होने के कारण इनके अंश ३० में घटा कर कारकता विचार करना ॥

अथामात्यादिचरकारकानाह—

तस्यानुसरणादमात्यः ॥१३॥ तस्य भ्राता ॥१४॥ तस्य माता ॥१५॥ तस्य पिता ॥१६॥ तस्य पुत्रः ॥१७॥ तस्य ज्ञातिः ॥१८॥ तस्य दाराश्च ॥१९॥

सं०—तस्यात्मकारकस्य 'अनुसरणात्' आत्मकारकापेक्षयाऽल्पांशतया पश्चादवस्थानात्—अमात्यो मन्त्रिकारको भवति । तस्यामात्यकारकस्यानुसरणात् (अमात्यकारकादल्पांशो) भ्राता भ्रातृकारकः। एवमेव क्रमादल्पाल्पांशा ग्रहा मातृ-पितृ-पुत्र-ज्ञाति-दार-कारका ज्ञेयाः ।

भा०—आत्मकारक के अव्यवहित पीछे रहने वाला (अर्थात् अल्प अंशवाला) ग्रह अमात्यकारक होता है। तथा अमात्य (मन्त्री) कारक से न्यून अंश वाला भ्रातृकारक, उससे न्यून अंशवाला मातृकारक, उससे न्यून अंशवाला पितृकारक, उससे भी कम अंशवाला पुत्र कारक, उससे भी अल्प अंशवाला ज्ञातिकारक तथा उससे भी कम अंशवाला दार (स्त्री) कारक ग्रह होता है।

अथान्यदाह—

मात्रा सह पुत्रमेके समामनन्ति ॥२०॥

सं—एके केचिदाचार्या मात्रा सह मातृकारकेण समं पुत्रं पुत्रकारकः समामनन्ति, मातृकारकादेव पुत्रस्यापि विचारं कुर्वन्तीत्यर्थः ।

सप्तकारकमतानुयायिनां मध्येऽपि मतद्वय केचित् पृथक् पुत्रकारकं न मन्यन्ते, केचित् पितृकारकं न मन्यन्ते । अष्टकारकमतावलम्बिनस्तु पृथगेव पितृपुत्रकारकौ मन्यन्ते ।

भा०—कितने आचार्य मातृकारक को ही पुत्रकारक भी मानते हैं । अर्थात् मातृकारक ग्रह से ही पुत्र का विचार करते हैं ।

सात कारक मानने वालों में भी दो मत हैं । जो पितृकारक मानते वे पुत्रकारक नहीं, और जो पुत्रकारक पृथक् मानते हैं वे पितृकारक नहीं मानते । और ८ कारक मानने वाले अलग अलग पितृकारक तथा पुत्रकारक भी मानते हैं ।

उदाहरणरूपं सप्तकारकचक्रम्—

आत्मा.	अमा.	भ्रा.	माता	पुत्र	ज्ञाति	दारा
बु.	मं.	बृ.	श.	सू.	बु.	च.

अथाष्टकारकचक्रम्—

आत्मा.	अमा.	भ्रा.	माता	पिता	पुत्र	ज्ञाति	दारा.
शु.	मं.	बृ.	श.	सू.	ज्ञाति	बु.	च.

अथ नित्यकारकानाह—

भगिन्यारतः श्यालः, कनीयान्, जननी च ॥२१॥

सं०—आरतः कुजात् भगिनी, श्यालः पत्नीभ्राता, कनीयाननुजः, जननी माता चेति विचार्याः ।

भा०—मङ्गल ग्रह से बहिन, साला, छोटा भाई और माता का विचार करना चाहिये अर्थात् इन सबों का शुभाशुभ फल मङ्गल से देखना चाहिये ।

मातुलादयो बन्धवो मातृसजातीया इत्युत्तरतः ॥२२॥

सं०—उत्तरतः (कुजाग्रस्थिताद्) बुधात् मातुलादयो बन्धवो, मातृसजातीयाः मातृतुल्या इति विचार्याः ।

भा०—बुध से मामा और उनके सदृश कुटुम्ब, तथा माता-सदृश (मौसी चाची आदि) का विचार करना ।

पितामहः पतिपुत्राविति गुरुमुखादेव जानीयात् ॥२३॥

सं०—गुरुमुखाद् बृहस्पत्यादितः क्रमेण पितामहः पतिपुत्रौ इति जानीयाद् बृहस्पतितः पितामहं, शुक्रात् पतिं स्वामिनं, शनेः पुत्रं विचारयेदित्यर्थः ।

भा०—बृहस्पति से पितामह, शुक्र से पति (पालक), शनि से पुत्र का विचार करना चाहिये ।

पत्नी पितरौ श्वशुरौ मातामहा इत्यन्तेवासिनः ॥२४॥

सं०—ग्रहाणामन्ते वसतीत्यन्तेवासी तमो ग्रहः केतुस्तस्मादन्तेवासिनः (केतोः) पत्नी भार्या, पितरौ मातापितरौ, श्वशुरौ श्वश्रूश्वशुरौ, मातामहा इति सर्वे विचारणीयाः ।

वि०—कैश्चित्—"अन्तेवासी शुक्रस्तस्मात्" इति व्याख्यातं तदसङ्गतं, शुक्रस्यान्तेवासित्वाभावात् । "अन्तेवासी भवेच्छिष्ये चण्डाले प्रान्तगेऽपि च" इति विश्वोक्तेः ॥

भा०—केतु से स्त्री, माता, पिता, सास, ससुर तथा मातामह इन सबों का विचार करना चाहिये ।

वि०—कितने आचार्यों ने अन्तेवासिशब्द से शुक्रका ग्रहण किया है, परन्तु वह असङ्गत है । यहाँ "अन्तेवासी" शब्द से ग्रहों के अन्त में रहनेवाला केतु (तमो ग्रह) ही महर्षि का अभिप्रेत है । क्योंकि चर-कारकों में भी केतु का ग्रहण हुआ है इस लिये स्थिरकारक भी केतु का होना समुचित है । रवि और चन्द्रमा का कारकत्व आगे कहा गया है ।

अथ-अर्गलाद्युपयोगिग्रहाणां नैसर्गिकबलमाह—

मन्दो ज्यायान् ग्रहेषु ॥२५॥

सं०—मन्दः शनिः ग्रहेषु रव्यादेषु ज्यायान् वृद्धो दुर्बल इत्यर्थः। अत्र "ज्यायान् वाऽऽज्यान्" इति दुर्बलार्थबोधकः। "वृद्धप्रशस्ययोर्ज्यायान्" इत्यमरोक्तेः। वृद्धं सर्वेऽपि दुर्बलं मन्यन्ते। अतः सूर्यादयो ग्रहा उत्तरोत्तरक्रमात् दुर्बला भवन्तीति सिद्ध्यति। केचित्तु—"श-कु-बु-गु-शु-च-राद्या वृद्धितो वीर्यवन्तः" इति बृहज्जातकोक्तं बलं स्वीकुर्वन्ति। तथा च ग्रहेषु शनेर्दुर्बलत्वकथनात् राहुकेत्वोर्ग्रहत्वे तयोः सर्वग्रहापेक्षया बलित्वमायातीत्यनुक्तमपि ज्ञेयम्।

भा०—सब ग्रहों में शनि दुर्बल है। अर्थात् सूर्यादि ग्रह उत्तरोत्तर क्रम से निर्बल हैं। यथा सूर्य से निर्बल चन्द्रमा, चन्द्रमा से मङ्गल, मङ्गल से बुध, बुध से बृहस्पति, बृहस्पति से शुक्र, शुक्र से शनि निर्बल है। कोई बृहज्जातकोक्त बलक्रम—(अर्थात् शनि, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र, सूर्य इनको उत्तरोत्तर क्रम से बली) मानते हैं।

वि०—राहुकेतु के ग्रहत्व स्वीकार में सब ग्रहों में "शनि के दुर्बलत्व कथन से" राहुकेतु में सब से बलित्व सिद्ध होता है।

राहु के ग्रहत्व में संहितावाक्य—

"अमृतस्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके॥" इति स्पष्टार्थम्॥

तथा वृद्धकारिकोक्त राहुकेतु के गृह (राशि)—

"शनिराह्वोर्गृहं कुम्भः कुजकेत्वोश्च वृश्चिकः।
इति वृद्धमतादेव नयन्तीह जगद्द्वयम्॥"

अर्थ—शनि और राहु दोनों का भवन कुम्भ, यथा केतु मङ्गल इन दोनों का भवन वृश्चिक राशि है। सब इसी मत से चरदशानयन में वर्षमान आनयन करते हैं।

प्रश्नभैरव में—बुध तथा बृहस्पति ये दोनों राहु केतु के मित्र हैं इसलिये राहु का गृह कन्या, तथा केतु का गृह मीन कहा गया है। यथा:—

"अङ्गीकृतं सौम्यगृहं सुहृत्त्वात्कन्याह्वयं तच्च विधुन्तुदेन।
तत्सप्तमं यत् शिखिना गृहीतं मीनाह्वयं चेति बुधा वदन्ति॥ स्पष्टार्थं।

किन्तु लोग चरदशा के वर्षानयन में इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं।

तथा प्रश्नभैरवोक्त राहुकेतु के उच्चगृह—

"स्यात्सिंहिकायास्तनयस्य तुङ्गं नृयुग्मसंज्ञं बुधदैवतं च।
पुच्छस्य केतोर्गदितं च तुङ्ग तत्कार्मुकाख्यं गुरुदैवतं च॥"

अर्थ—बुध की राशि (मिथुन) राहु का उच्च, तथा गुरु की राशि (धनु) केतु का उच्च है। किन्तु इसको परदशानयन में लोग नहीं मानते हैं।

सर्वार्थचिन्तामणि में बृहस्पति, शुक्र, शनि ये तीनों राहु तथा केतु के मित्र कहे गये हैं। यथा—

"राहोस्तु मित्राणि कवीड्यमन्दाः केतोस्तथैवात्र वदन्ति तज्ज्ञाः।" इति॥

इस प्रकार राहु केतु के गृह, उच्च आदि में मत भेद हैं। किन्तु अतीन्द्रिय ज्ञेयविषय में युक्ति कुछ काम नहीं देती इस लिये वहाँ वृद्धवाक्य ही प्रमाण है। कहा भी है—

"ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये॥" इति।

अथ सामान्येन चरदशावर्षगणनाक्रममाह—

प्राचीवृत्तिर्विषमभेषु ॥२६॥ परावृत्योत्तरेषु ॥२७॥

सं०—विषमभेषु मेषमिथुनादिविषमराशिषु प्राचीवृत्तिः क्रमगणना स्यात्। उत्तरेषु वृषकर्कादिसमराशिषु परावृत्या विलोमरीत्या (उत्क्रमगणना भवतीत्यर्थः)।

भा०—आगे कहे हुए चरदशा के वर्ष आनयन के लिये विषम (मेष, मिथुन आदि) राशियों में क्रम से गणना होती है। तथा सम (वृष, कर्क आदि) राशियों में उत्क्रमगणना होती है।

अथात्र विशेषसूत्रमाह—

न क्वचित् ॥२८॥

सं०—क्वचित् (विषमराशावपि) क्रमगणना न स्यात्। तथा क्वचित् (समराशावपि) उत्क्रमगणना न भवतीत्यर्थः। कुत्र न भवतीत्याकांक्षायां—"पदक्रमात् प्राक्प्रत्यक्त्वं चरदशाया"मित्यग्रे वक्ष्यति। एतेन विषमपदीयराशिषु क्रमगणना, समपदीयराशिषु उत्क्रमगणना सिद्ध्यति।

भा०—कहीं विषम राशि में भी क्रम गणना नहीं होती, तथा कहीं सम राशि में भी उत्क्रमगणना नहीं होती है। कहाँ नहीं होती ? इस आकांक्षा में "पदक्रमात्प्राक्प्रत्यक्त्वं" इत्यादि आगे कहे हुए सूत्र से यह सिद्ध होता है कि विषमपदीय सम राशि (वृष, वृश्चिक) में भी क्रम गणना, तथा समपदीय विषम राशि (सिंह, कुम्भ) में भी उत्क्रम गणना होती है। यथा वृद्धकारिका—

"क्रमाद् वृषे वृश्चिके च व्युत्क्रमात् कुम्भसिंहयोः।" इति ॥

पदज्ञानप्रकार—

"मेषादित्रित्रिभैर्ज्ञेयं पदमोजपदे क्रमात्।
दशाब्दानयने कार्या गणना, व्युत्क्रमात् समे ॥

अर्थ—मेषादि तीन तीन राशियों का एक एक पद होता है, (इस प्रकार १२ राशियों में ४ पद होते हैं)। चरदशा वर्ष समझने के लिये विषम (१।३) पदस्थ राशियों में क्रम से, तथा सम (२।४) पदस्थ राशियों में उत्क्रम से गणना होती है। इस प्रकार
विषमपदीय राशियाँ—(१) मेष, वृष, मिथुन। (३) तुला, वृश्चिक, धनु।
समपदीय राशियाँ—(२) कर्क, सिंह, कन्या। (४) मकर, कुम्भ, मीन ॥

अथ चरदशावर्षसंख्यामाह—

नाथान्ताः समाः प्रायेण ॥२९॥

सं०—चरदशायां राशीनां नाथान्ताः स्वस्वाधिपाश्रितराशिपर्यन्ताः समा दशावर्षाणि भवन्ति। अयं भावः—पूर्वोक्तक्रमोत्क्रमगणनायुक्त्या भावराश्यादितः तत्स्वामी चेदेकराशितुल्योऽग्रे वर्तते तदैकोऽब्दः। राशिद्वयतुल्योऽग्रे चेद् द्वावब्दौ इत्यादिकमग्रेऽपि बोध्यम्। एतेन द्वितीये नाथश्चेदेकोऽब्दः, तृतीये चेद् द्वावब्दौ चतुर्थे चेत् त्रयोऽब्दाः,......एवं द्वादशे चेत् एकादशाब्दाः, स्वराशौ नाथे द्वादशाब्दा इति सिद्ध्यति॥ 'प्रायेण' इति पदेन "स्वराशिस्थितनाथो भावात्पृष्ठे चेद्द्वादशाब्दाः, भावादग्रे चेदेकोऽब्द" इत्यपि सूचितं भवति।

अत एव क्रमगणना चेत् तदा स्वामिराश्यादितस्तद्भावराश्यादिकं विशोध्य शेषं वर्षादिकं ज्ञेयम्। उत्क्रमगणना चेत्तदा भावराश्यादितस्तत्स्वामिराश्यादि

विशोध्य शेषतुल्यं तद्राशेर्दशादिकं स्फुटं भवतीति । तथा चोच्चस्थे स्वामिन्येक-वर्षवृद्धिः, नीचस्थे स्वामिन्येकवर्षह्रास इत्यादिकमपि सूचितं मुनिवरैरिति दिक् ।

भा०—पूर्वोक्त क्रम उत्क्रम गणना के अनुसार लग्नादि राशियों की अपने अपने स्वामिस्थिति राशिपर्यन्त जो संख्या हो प्रायः उन उन राशियों के उतने ही चरदशा वर्ष होते हैं ।

प्रायः (प्रायेण) इस पद से यह सूचित होता है कि भाव की राशि से १ राशि आगे स्वामी हो तो एक वर्ष, डेढ़ राशि आगे हो तो डेढ़ वर्ष, इत्यादि........इससे स्पष्ट हुआ कि राशि से द्वितीय में स्वामी हो तो (एक राशि आगे होने के कारण) एक वर्ष, एवं तृतीय में स्वामी हो तो २ वर्ष......द्वादश में स्वामी हो तो ११ वर्ष यदि राशि ही में स्वामी हो तो १२ वर्ष, अथवा एक वर्ष। अर्थात् भाव से पीछे स्वराशिस्थ स्वामी हो तो १२ वर्ष, भाव से आगे स्वराशिस्थ हो तो एक वर्ष । तथा वृद्धकारिका—

"तस्मात्तदीशपर्यन्तं संख्यामत्र दशां विदुः ।
वर्षद्वादशक तत्र न चेदेकं विनिर्दिशेत् ॥" स्पष्टार्थः ॥

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि—क्रम गणना में स्वामी की राश्यादि में भाव की राश्यादि घटाकर, तथा उत्क्रम गणना में भाव की राश्यादि में स्वामी की राश्यादि घटाकर शेष राशि तुल्य वर्ष तथा अंशादि पर से अनुपात से मासादि होता है ।

यथा पूर्वलिखित उदाहरण में तुला लग्न के विषम (तृतीय) पदीय होने के कारण क्रम गणना है; अतः लग्न राश्यादि ६।१८।३४।४६ को उसके स्वामी शुक्र की राश्यादि ८।२५।४३।१८ में घटाने से २।७।८।३२ शेष राशि २ के तुल्य वष हुआ। शेष पर से अनुपात यदि ३० अंश में १२ मास तो शेष ७।८।३२ अंशादिकों में क्या? इस प्रकार

लब्ध $= \frac{१२ \; (७।८।३२)}{३०}$ = २।२५।४२।२४ = मासादि हुआ। अतः

स्पष्ट लग्न की दशावर्षादि २।२।२५।४२।२४ परन्तु स्वल्पान्तर से व्यवहारार्थ-तुला से २ राश्यन्तरित धनु में शुक्र के रहने से २ ही वर्ष ग्रहण किये जाते ।

तथा उच्च में स्वामी रहे तो १ वर्ष वृद्धि और नीच में स्वामी के रहने से १ वर्ष अल्प हो जाता है। यथा वृद्धकारिका—

"उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं हि योजयेत्।
तथैव नीचखेटस्य वर्षमेकं विशोधयेत्॥" स्पष्टार्थः।

तथा वृश्चिक और कुम्भ के दो दो स्वामी हैं, वहाँ किस प्रकार दशा-वर्ष की गणना उचित है? इस विषय में वृद्धकारिका—

"द्विनाथक्षेत्रयोरत्र क्रियते निर्णयोऽधुना।
एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः॥
तदाऽन्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत्।
स्वक्षेत्रे मिलितावेव स्वामिनो द्वादशाब्दकाः॥
एकस्य स्वगृहस्थत्वं नैव कार्योपयोगिकम्।
द्वावप्यन्यर्क्षगौ तौ चेत् सग्रहो बलवान् भवेत्॥
ग्रहयोगसमत्वे तु ज्ञेयं राशिबलाद्बलम्।
चरस्थिरद्विस्वभावाः क्रमात् स्युर्बलशालिनः॥
राशिबल-समानत्वे बहुवर्षो बली भवेत्।
एकः स्वोच्चगतस्त्वन्यः परत्र यदि संस्थितः॥
ग्राह्यं तदोच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय च।
एवं सर्वं समालोच्य जातकस्य फलं वदेत्॥" इति॥

अर्थ—वृश्चिक तथा कुम्भ के दो स्वामी हैं उसका निर्णय करते हैं। यदि एक स्वामी उसी राशि में हो तथा दूसरा अन्यत्र हो तो दूसरे ही तक दशावर्ष की संख्या ग्रहण करना। यदि स्वराशि ही में दोनों स्वामी हों तो १२ वर्ष होते हैं। एक का स्वगृह में रहना उपयोगित्व नहीं है। यदि दोनों स्वामी भिन्न भिन्न राशि में हों तो ग्रहयुक्त स्वामी बलवान् होता है, इस लिये वहाँ तक संख्याग्रहण करना। यदि ग्रहयोग भी बरा-बर हो तो राशि के बल से बली होता है। यथा—चर से स्थिर, स्थिर से द्विस्वभाव बली होता है। राशि बल में भी समता हो तो जिसकी दशावर्ष संख्या अधिक हो वह बली होता है। एक यदि स्वोच्च में हो

दूसरा अन्यत्र हो तो उच्चस्थ ग्रह तक ही संख्या ग्रहण करना । दूसरे की अधिक संख्या होने पर भी नहीं ग्रहण करना । इस प्रकार विचार कर जातक का फल कहना ।

ग्रहों के क्षेत्र तथा उच्च बृहज्जातकोक्त—

"क्षितिज-सित-ज्ञ-चन्द्र-रवि-सौम्य-सितावनिजाः ।
सुरगुरु-मन्द-सौरि-गुरवश्च गृहांशकपाः ॥"

"अज-वृषभ-मृगाङ्गना-कुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः ।
दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः ॥"

इत्यादि अनुक्त विषयों को जानना ।

चर दशा में उपयोगी आगे अध्याय के भी जितने सूत्र हैं उन सबों को उदाहरण के स्पष्टार्थ यथाक्रम सूत्राङ्क के सहित इस प्रकरण में भी लिख देते हैं—

अथ चरदशारम्भतल्लेखनक्रममाह—

पञ्चमे पदक्रमात् प्राक्प्रत्यक्त्वं चरदशायाम् २।३।२९।

सं०—चरदशायां पञ्चमे (९) लग्नान्नवमे पदक्रमात् विषमसमपदक्रमतः प्राक् प्रत्यक्त्वं क्रमोत्क्रमगणना भवति ॥

भा०—लग्न से (९) नवम राशि विषमपदीय हो तो क्रम से लग्नादि राशियों की चरदशा होती है । यदि (९) नवम राशि सम-पदीय हो तो उत्क्रम से लग्नादि राशियों की चरदशा समझना ।

उदाहरण—पूर्वलिखित उदाहरण में तुला लग्न है, उससे नवमा (मिथुन) विषमपदीय है इसलिये लग्न से आरम्भ करके क्रम से (अर्थात् तुला, वृश्चिक, धनु इत्यादि) राशियों की चरदशा होगी । स्पष्टार्थ आगे चक्र देखिये ।

वर्षगणना—यथा—तुला राशि विषमपदीय है; उसका स्वामी शुक्र धनु में है अतः क्रम गणना से २ वर्ष चरदशा का मान हुआ । वृश्चिक के मङ्गल, केतु के दो स्वामी तथा वृश्चिक के विषमपदीय होने के कारण क्रम से मङ्गल तक गणना से ४, तथा केतु तक ९ संख्या होती है, अतः

पूर्वोक्त निर्णय के अनुसार अधिक संख्या लेने से वृश्चिक की चरदशा ९ वर्ष की हुई। एवं धनु के स्वामी वृष में है अतः ५ वर्ष दशा हुई। तथा मकर समपदीय राशि है अतः उत्क्रम (धनु, वृश्चिक आदि) गणना से कर्कस्थ शनि तक ६ वर्ष दशा हुई। तथा कुम्भ के स्वामी शनि और राहु दो हैं। उनमें राहु कुम्भ में ही है, शनि कर्क में है अतः "एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु" इत्यादि पूर्वोक्त रीति से शनि तक उत्क्रम गणना से ७ वर्ष कुम्भ की दशा हुई। एवं सब राशियों की दशा समझना। स्पष्टार्थ चक्र देखिये।

चरदशाचक्रम्—

राशि	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृष.	मि.	क.	सिं.	कन्या.	वयोग.
वर्ष	२	९	५	६	७	१०	११	७	८	८	६	७	८६
शाके	१७८०	१७८२	१७९१	१७९६	१८०२	१८०९	१८१९	१८३०	१८३७	१८४५	१८५३	१८५९	१८६६
सूर्यराश्यादि	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	१० १२ ५७ ३८

अथ चरान्तरदशासूत्रमाह—

यावद् विवेक-मावृत्तिर्भानाम् ॥३०॥

सं०—(एकैकराशिदशायां द्वादशराशीनामन्तर्दशा भवन्त्यत एव) भानां राशीनां विवेकं (१४४) चतुश्चत्वारिंशदधिकशतं यावदावृत्तिः (अन्तर्भोग-संख्या) भवति ॥ अन्तर्दशामानं तु दशावर्षद्वादशांशसमानमेव सर्वेषां ज्ञेयम् ॥

भा०—(प्रत्येक राशि की दशा में १२ राशियों की अन्तर्दशा होती है अत एव) १२ राशियों को १४४ आवृत्ति (अन्तर्दशा भोग संख्या) होती है।

अन्तर्दशा का मान दशावर्ष के द्वादशांश (अर्थात् जितने वर्ष हों उतने मास) हर एक राशि का होता है। यथा वृद्धकारिका—

"कृत्वाऽर्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद्ददेत्" स्पष्टार्थः ॥ इति ॥

इस प्रकरण में आवश्यक समझ कर द्वितीय अध्याय चतुर्थ पाद के कुछ 'सूत्र' अर्थ सहित यहाँ लिखते हैं।

अथैतदन्तर्दशारम्भक्रममाह—

पितृलाभप्राणितोऽयम् ॥२।४।७॥

सं०—पितृलाभप्राणितो (लग्नसप्तमयोर्बलवतो राशेरारभ्य) अयं (चरनवांशश्चरान्तर्दशेत्यर्थः) प्रवर्तते ॥

भा०—लग्न, सप्तम में जो बली हो उस राशि से चरान्तर्दशा का आरम्भ होता है। लग्न शब्द से प्रथम दशाश्रित राशि समझना।

लिखने की रीति—दशाश्रित राशि से ९ नवमी राशि विषमपदीय हो तो क्रम, समपदीय हो तो उत्क्रम गणनानुसार समझना।

अथात्र विशेषमाह—

प्रथमे प्राक्प्रत्यक्त्वम् २।४।८॥

सं०—प्रथमे (चरराशौ) प्राक्प्रत्यक्त्वम् विषमसमराशिभेदेन क्रमोत्क्रमगणना स्यात्।

भा०—दशाश्रित राशि चर हो तो दशाश्रित राशि और उससे सप्तम में जो प्रथम-बली हो उससे विषम समभेद से क्रमोत्क्रम समझना।

द्वितीये रवितः ॥ २।४।९ ॥

सं०—'दशाश्रितराशौ द्वितीये स्थिरे सति (तत्सप्तमयोर्बलवद्राशिमारभ्य 'विषमसमभेदेन' क्रमोत्क्रमगणनया) रवितः षष्ठ-षष्ठ-राशिक्रमादन्तर्दशा प्रवर्तते।

भा०—स्थिर राशि हो तो लग्न सप्तम में जो बली हो उससे षष्ठ-षष्ठ राशियों की अन्तर्दशा होती है। विषम-समभेद से क्रम उत्क्रम गणना समझना।

पृथक्क्रमेण तृतीये चतुष्टयादि २।४।१० ॥

सं०—तृतीये द्विस्वभावराशौ 'लग्नसप्तमयोर्बलवतः' चतुष्टयादि केन्द्रादि

पृथक्क्रमेण (पूर्वं तदादि तत्केन्द्रस्थानां, ततस्तत्पञ्चमादिपणफरस्थानां, ततस्त-न्नवमाद्यापोक्लिमस्थानां) राशीनामन्तर्दशा भवन्तीत्यर्थः। विषमे राशौ प्रथम-पञ्चम-नवमादितः, समे प्रथम-नवम-पञ्चमादितो गणनाविधिरिति।

भा०—द्विस्वभाव राशियों में भिन्न भिन्न रीति से केन्द्रादि (केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम) राशियों की अन्तर्दशा होती है।

भा०—तीनों सूत्र का भावार्थ यह है कि चर में यदि मेष वा तुला हो तो क्रम से; यदि कर्क वा मकर हो तो उत्क्रम से अन्तर्दशा होती है। स्थिर में यदि सिंह, कुम्भ हो तो क्रम से; यदि वृष, वृश्चिक हो तो उत्क्रम से अन्तर्दशा होती है। द्विस्वभाव में यदि मिथुन बलवान् हो तो पहिले मिथुन, कन्या, धनु, मीन, तब तुला, मकर, मेष, कर्क, फिर कुम्भ, वृष, सिंह, वृश्चिक की अन्तर्दशा होती है। यदि कन्या बलवती हो तो कन्या, मिथुन, मीन, धनु, वृष, कुम्भ, वृश्चिक, सिंह, मकर, तुला, कर्क, मेष की अन्तर्दशा होती है। इसी प्रकार धनु में धनु आदि द्विस्वभाव, मेषादि चर सिंह आदि स्थिर राशियों की, क्रम से, तथा मीन में उत्क्रम से मीन, धनु आदि द्विस्वभाव, वृश्चिक, सिंह आदि स्थिर, कर्क, मेष आदि चर की अन्तर्दशा होती है। तथा वृद्धकारिका—

> "चरेऽनुज्झितमार्गः स्यात् षष्ठषष्ठादिकाः स्थिरे।
> उभये कण्टकाज्ज्ञेया क्रमपञ्चमभाग्यतः॥
> चरस्थिरद्विस्वभावेष्वोजेषु प्राक्क्रमो मतः।
> तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यमुत्क्रमतोऽखिलम्॥
> एवमालिखितो राशिः पाकराशिरुदीर्यते।
> स एव भोगराशिः स्यात् पर्याये प्रथमे स्मृतः॥
> लग्नाद् यावतियः पाकः पर्याये यत्र दृश्यते।
> तस्मात् तावतिथो भोगः पर्याये तत्र गृह्यताम्॥
> तदिदं चरपर्याय—स्थिरपर्याययोर्द्वयोः।
> त्रिकोणाख्यदशायां च पाकभोगप्रकल्पयन्॥ इत्यादि॥

अन्तिम कारिका से यह सिद्ध होता है कि चरान्तर्दशा के समान

ही आगे कहे हुए स्थिर दशा और त्रिकोण दशा में भी अन्तर्दशा की गणना होती है।

चरान्तर्दशोदाहरण—पूर्वलिखित जन्म कुण्डली देखो—तुला और उससे सप्तम (मेष) इन दोनों में मेष बली है इसलिये तुला की चर दशा में क्रम से मेषादि १२ राशियों की अन्तर्दशा होगी। तुला के दशा मान २ वर्ष, अतः उसके द्वादशांश (दो मास) हर एक राशि की अन्तर्दशा का मान होगा। इसी प्रकार अन्य राशियों में भी समझना।

अथ चरदशायां केतोः शुभत्वमाह—

अत्र शुभः केतुः २।३।३१।

सं०—अत्र चरदशायां केतुः शुभः शुभफलप्रदः स्यात्।

भा०—चरदशा में केतु शुभफलप्रद होता है।

अथ सामान्येनारूढापरपर्यायं पदं कथयति—

यावदीशाश्रयं पदमृक्षाणाम् ॥३१॥

सं०—ऋक्षाणां (राशीनां) यावदीशाश्रयं (यावाँश्चासावीशश्चेति यावदीशः स आश्रयो यस्य तत् पदं आरूढाख्यं) स्यात्। विचारणीयराशितस्तत्स्वामी यत्संख्यातुल्यराशौ तिष्ठति तस्मात् तत्संख्यातुल्यराशिर्विचारणीयराशेः पदं भवतीति।

अत्र कैश्चिद् "वृश्चिककुम्भयोर्द्विनाथत्वात्पदद्वयं वेदितव्यम्। तथा च पदद्वयात् फलमादेश्यम्। एवं ग्रहस्यापि पदमूहनीयम्" इत्युक्तं तदसङ्गतमिव।

भा०—विचारणीय राशि से उसका स्वामी जितने संख्यक राशि में हो फिर उससे उतने ही संख्यक राशि विचारणीय राशि का पद (आरूढ़) होता है तथा वृद्धकारिका—

"लग्नाद् यावतिथे राशौ तिष्ठेल्लग्नेश्वरः क्रमात्।
ततस्तावतिथं राशिं लग्नारूढं प्रचक्षते"॥ इति॥

वि०—कितने लोगों का मत है कि—"कुम्भ वृश्चिक के दो स्वामी हैं अतः इन दोनों के दो दो पद होते हैं। एवं ग्रह से उसकी गृह (राशि) जितने दूर पर हो उससे उतने दूरवाली राशि उस ग्रह का पद समझना।"

ग्रहों के भी राशि के अनुसार दो दो या एक-एक पद समझकर फलादेश करना।" परन्तु वास्तव तो यही होना चाहिये कि पूर्वरीति के अनुसार जो स्वामी बलवान् हो उसी से पद ग्रहण करना तथा ग्रहों की पद कल्पना युक्ति सङ्गत नहीं प्रतीत होती है॥

अथात्र विशेषमाह—

स्वस्थे दाराः ॥३२॥ सुतस्थे जन्म ॥३३॥

सं०—स्व (४) स्थे राशितश्चतुर्थस्थे तत्स्वामिनि दाराः (४) चतुर्थमेव पदं भवति। तथा सुत (७) स्थे सप्तमस्थे स्वामिनि जन्म (१०) दशमो राशिः पदं भवति।

भा०—यदि विचारार्ह राशि से चतुर्थ ४ स्थान में उसका स्वामी हो तो वही चतुर्थ राशि पद होता है। तथा यदि ७ सप्तम में स्वामी हो तो विचारणीय राशि से १० दशम राशि पद होता है। ये इन दो स्थानों के लिये विशेष सूत्र कहे गये हैं।

उदाहरण—यथा तुला लग्न के स्वामी तुला से तृतीय (धनु) में है, अतः धनु से तृतीय (कुम्भ) तुला का पद हुआ।

तथा विशेष सूत्र के उदाहरण—सिंह के स्वामी सिंह से सप्तम में है अतः सिंह से दशवाँ (वृष) सिंह का पद हुआ। इत्यादि।

कैश्चित् 'स्व' पदेन स्वकीयं वा द्वितीय, तथा दारादिशब्देन सप्तमादिकमन्य-जातकं तन्न ग्राह्यमेतदर्थमेवात्र विशेषमाह—

सर्वत्र सवर्णा भावा राशयश्च ॥३४॥ न ग्रहाः ॥३५॥

सं०—सर्वत्र (अस्मिन् ग्रन्थ आदितोऽन्तपर्यन्तं) भावा राशयश्च सवर्णा एकादिसंख्याबोधकाक्षरगम्याः (क-ट-प-यवर्गभवैरित्यादिवर्णैरवगम्या इत्यर्थः)। तथा चकारात् सवर्णा वर्णदेन राशिना सहिता वर्णदराशिदशासहिता ज्ञेया इति। न ग्रहाः, राशिवद् ग्रहा वर्णगम्या न भवन्तीत्यर्थः॥

भा०—इस ग्रन्थ में आद्योपान्त सब जगह भाव और राशियों की संख्या (क-ट-प-य-वर्गभवैः इत्यादि) वर्ण (अक्षर) से ग्रहण करना। तथा चकार से सवर्ण अर्थात् वर्णद दशा सहित भाव राशियों का ग्रहण करना। किन्तु वर्ण से ग्रहों का ग्रहण नहीं करना॥

वर्णद राशिज्ञानार्थं वृद्धकारिका—

"ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत् क्रमात् ।
समलग्नप्रसूतानां मीनादेरुत्क्रमादिति ॥
मेषमीनादितो जन्म-लग्नान्तं गणयेत् सुधीः ।
तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः परम् ॥
पुंस्त्वेन स्त्रीतया वैते सजातीये उभे यदि ।
तर्हि संख्ये योजयीत वैजात्ये तु विशोधयेत् ॥
मेष-मीनादितः पश्चाद् यो राशिः स तु वर्णदः ।" इति ।

भावार्थ—लग्नराशि विषम हो तो यथावत् रहने देना, यदि सम हो तो १२ में घटाकर शेष राश्यादि लेना, इस प्रकार जन्म लग्न और होरा लग्न को करने से यदि दोनों विषम या दोनों सम हो तो जोड़ लेना, यदि एक विषम, एक सम हो तो दोनों का अन्तर कर लेना, एवं योग अन्तर करने से विषम संख्या हो तो वही वर्णद होता है। यदि सम हो तो १२ में घटाकर शेष वर्णद समझना।

उदाहरण-यथा-जन्म लग्न ६।१८।३४।४६ तथा होरालग्न २।२०।९।३८ दोनों विषम हैं अतः योग करने से ९।८।४४।२४ सम (मकर) हुआ इस लिये १२ राशि में घटाने से=२।२१।१५।३६ वर्णद मिथुन हुआ ॥

अथ वर्णद दशाप्रकार--

"होराल्गनभयोर्नैयाऽदुर्बलाद् वर्णदा दशा ।
यत्संखयो वर्णदो लग्नात्तत्तत्संख्या क्रमेण वै ॥
क्रमव्युत्क्रमभेदेन दशा स्यात् पुरुषस्त्रियोः ।"

भावार्थ--लग्न तथा होरालग्न में जो बली हो उससे वर्णद दशा की प्रवृत्ति होती है। तथा लग्न होरालग्न में जो बली हो उससे वर्णद-राशि तक गिनने से विषम संख्या हो तो क्रम से, सम संख्या हो तो उत्क्रम से सब राशियों की दशा होती है। दशावर्ष के प्रमाण चरदशा में जिस राशि के जितने वर्ष हैं वही यहाँ भी लेना।

उदाहरण— जन्म लग्न तुला, होरालग्न मिथुन इन दोनों में मिथुन

बली है, तथा वर्णद भी मिथुन ही है, इसलिये विषम संख्या (१) होने के कारण मिथुन से क्रम (मिथुन-कर्क-इत्यादि) रीति से दशा लिखना।

कितने लोग—होरा लग्न में एक एक राशि जोड़कर धनभावादि के होरालग्न मानते हैं। तथा प्रत्येक भाव के वर्णद राशि बनाकर "नाथान्ताः समाः" के सदृश "वर्णदान्ताः समाः" कल्पना कर वर्णद दशा में वर्षमान मानते हैं। परञ्च इस में मूल क्या है? यह समझना कठिन सा है। अतः कहा भी है—

"मतभेदे मुनीनां तु ज्यौतिषे वैद्यके तथा।
घटेत सुफलं यस्माद् विदा ग्राह्य तदेव हि॥"

अथ होरादिज्ञानार्थमाह—

होरादयः सिद्धाः ॥३६॥

(इति जैमिनिसूत्रप्रथमाध्याये प्रथमपादः॥)

सं०—होरादयः (राशि-होराद्रेष्काणादिकाः षड्वर्गाः) सिद्धाः गर्गादि-शास्त्रोक्ता एव ज्ञेयाः।

भा०—होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश त्रिंशांश आदि शास्त्रा-न्तरोक्त ही प्रसिद्ध यहाँ भी समझना।

इति ज्यौ० आ० श्रीसीतारामशर्मकृतायां जैमिनिसूत्रटीकायां
प्रथमाध्यायस्य प्रथमपादः।

—+❀+—

अथ द्वितीयपादो व्याख्यायते। तत्रात्मकारकनवांशवशतो ग्रहाणां फलं वाच्यमित्याह—

अथ स्वांशो ग्रहाणाम् ॥१॥

सं०—अथानन्तरं स्वांशः स्वस्यात्मकारकस्यांशो नवांशो ग्रहाणां 'फल-प्रबोधको ज्ञेयः' इति शेषः॥

भा०—अब इस द्वितीय पाद में आत्मकारक के नवांश से ग्रहा-दिकों का फल समझना।

अथ स्वांशाश्रितराशिफलान्याह—

पञ्च मूंषिकमार्जाराः ॥ २ ॥ तत्र चतुष्पादः ॥ ३ ॥

सं०—स्वांशे पञ्च ($\frac{61}{12}$ शे = १ मेषः) चेत् तदा मूषिकमार्जारा दुःखदा भवन्ति । तत्र = ($\frac{26}{13}$, २) वृषश्चेत्तदा चतुष्पादः वृषादयश्चतुष्पदाः सुखदा भवन्ति ॥

भा०—आत्मकारक के नवांश मेष का हो तो चूहों और बिलारों की वृद्धि घर में होती, अतः उससे दुःख होता है । तथा वृष का नवांश हो तो बैल आदि चतुष्पद की वृद्धि होती, उससे सुख होता है ।

वि०—यहाँ कारकांश में मेष की संख्या १ के स्थान में एक अक्षर पे, अथवा के इत्यादि एक ही अक्षर न कह कर महर्षि ने पञ्च (६५) शब्द का प्रयोग क्यों किया, क्योंकि जो एक ही वर्ण से संख्या बन जाती तो फिर उसके स्थान में २ वर्ण के प्रयोग से सूत्र में गुरुत्वापत्ति होती है । इस लिये सिद्ध होता है, कि १ आदि संख्या बोधार्थ पञ्च आदि शब्द अनेकार्थ युक्त है । सूत्र से सिद्ध है कि—कारकांश में (पञ्च = $\frac{63}{13}$, शे = १ मेष) हो तो मूषक और मार्जार हो । परञ्च मूषक और मार्जार की संख्या कितनी हो—उसके द्योतनार्थ महर्षि ने पञ्च (५ और ६५ बोधक) शब्द का प्रयोग किया । अर्थात् उस जातक के घर में ५ मार्जार और ६५ चूहे उपद्रावक होंगे ॥ १ ॥ इसी प्रकार आगे सूत्रों में भी संख्या समझनी चाहिये ।

मृत्यौ कण्डूः स्थौल्यश्च ॥४॥ दूरे जलकुष्ठादिः ॥५॥

सं०—स्वांशे मृत्यौ ($\frac{15}{12}$ शे = ३ मिथुने) कण्डूः स्थौल्यं च भवति ॥ दूरे ($\frac{28}{12}$ = कर्के) जलकुष्ठादिः जलाद्भय, कुष्ठादिरोगश्च स्यात् ।

भा०—मिथुन नवांश में दाद, खुजली तथा शरीर में स्थूलता १५ वें वर्ष में होती । कर्कांश में जल से भय और कुष्ठादि रोग २८ वें वर्ष में होता है ।

---

१ मूषिकैः सहिता मार्जारा इति मध्यपदलोपसमासतः साधुता ज्ञेया

शेषाः श्वापदानि ॥६॥ मृत्युवज्जायाग्निकणश्च ॥७॥

सं०—शेषाः (६५ = सिंहः) स्वांशश्चेत् तदा श्वापदानि दुःखदायकानि स्युः ॥ जाया (१८ = कन्या) चेत् तदा मृत्युवत् मिथुनवत् फलं (कण्डूः, स्थूलता) तथाऽग्निकणश्च भयप्रदः ॥

भा०— कारकांश सिंह हो तो ६५ वें वर्ष में कुक्कुरादि हिंसक जन्तुओं से भय। कन्या हो तो १८ वें वर्ष में मिथुनांशतुल्य (दाद [स्थूलता) फल, तथा अग्नि का भय होता है ॥

लाभे वाणिज्यं ॥८॥ अत्र जलसरीसृपाः स्तन्यहानिश्च ॥९॥

सं०—लाभे (तुलांशे) वाणिज्यं वणिग्व्यापारः ॥ अत्र (वृश्चिकांशे) जलसरीसृपाः भयदायकाः । स्तन्यहानिर्मातृदुग्धनाशो भवति ॥

भा०—कारकांश तुला हो तो ४३ वें वर्ष में व्यापार से लाभ ; वृश्चिक कारकांश हो तो २० वें वर्ष में जल-सर्पादि कीड़ों से भय तथा अत्र (जन्म समय में) माता के दुग्ध की हानि होती है ॥

समे वाहनादुच्चाच्च क्रमात् पतनम् ॥१०॥ जलचर-खेचर-खेट-कण्डू-दुष्टग्रन्थयश्च रिष्फे ॥११॥ तडागादयो धर्मे ॥१२॥ उच्चे धर्मनित्यता कैवल्यञ्च ॥१३॥

सं०—समे (धनुषि कारकांशे) वाहनात्, उच्चादुच्चप्रदेशाच्च क्रमात् पतन अवलम्बनपूर्वकं पतनं स्यादित्यर्थः । अत्र 'समे' इति पतनस्थलस्य विशेषणमपि प्रतिपादितम् ॥ रिष्फे (मकरांशे) जलचरा नक्रादयो जलजन्तवः खेचराः पक्षिणः, खेटाः यक्ष-ग्रहादयः, कण्डूः, दुष्टग्रन्थिः कुत्सितमांसग्रन्थिश्चैते क्लेशदायका भवन्ति ॥ धर्मे (कुम्भांशे) तडागादयः (तडागवापीकूप-खमनादिरूपधर्म-विशेषाः) ॥ उच्चे (मीने कारकांशे) धर्मनित्यता, कैवल्यं मोक्षश्च स्यात् ॥

भा०—कारकांश धनु हो तो ५७ वें वर्ष में समस्थान में घोड़ा आदि वाहन तथा उच्चस्थान से क्रमशः पतन (धीरे-धीरे अवलम्बन पूर्वक गिरने) का भय होता है ॥ मकर हो तो २२ वर्ष में जलचर (जलजन्तु), पक्षी आकाश में चलनेवाले यक्ष आदि से भय, तथा

खुजली तथा गठिया रोग होता है ॥ कुम्भांश हो तो ५९ वष में पोखर कूआँ आदि खुदवाता है । मीन हो तो ६० वष में धर्म में नित्यता और अन्त में उसे मोक्ष होता है ॥

अथ कारकांशकुण्डल्यां ग्रहस्थित्या फलान्याह—

तत्र रवौ राजकार्यपरः ॥१४॥ पूर्णेन्दुशुक्रयोर्भोगी विद्याजीवी च ॥१५॥ धातुवादी कौन्तायुधो वह्निजीवी च भौमे ॥१६॥ वणिजस्तन्तुवायाः शिल्पिनो व्यवहारविदश्च सौम्ये ॥१७॥ कर्मज्ञाननिष्ठा वेदविदश्च जीवे ॥१८॥ राजकीयाः कामिनः शतेन्द्रियाश्च शुक्रे ॥१९॥ प्रसिद्धाकर्माजीवःशनौ ॥२०॥ धानुष्काश्चौराश्च जाङ्गुलिका लोहयन्त्रिणश्च राहौ ॥२१॥ †गज-व्यवहारिणश्चौराश्च केतौ ॥२२॥

सं—तत्र तस्मिन् कारकांशे रवौ राजकार्यपरः स्यात् ॥ पूर्णेन्दुशुक्रयोः भोगी, विद्याजीवी च भवति ॥ भौमे धातुवादी, रसायनवेत्ता, वह्निजीवी अग्निना जीवनकर्ता च भवति ॥ शतेन्द्रिया वर्षशतजीवनः । प्रसिद्धकर्माजीवः स्वकुलोचितकर्मणा जीविकाकारकः । जाङ्गुलिं विषविद्यां विदुरिति जाङ्गुलिका विषवैद्या इत्यर्थः । अन्यत् स्पष्टम् ॥

भा०—आत्मकारक के नवांश में सूर्य हो तो राजा का कार्यकर्ता होता है । पूर्णचन्द्र और शुक्र हो तो भोग करने वाला, तथा विद्या से जीविका करने वाला होता है । मङ्गल हो तो रसायन विद्या जाननेवाला कुन्तशस्त्र (भाला) रखनेवाला और अग्नि से जीविका करने वाला होता है । बुध हो तो व्यापार करने वाला, कपड़ा बिनने वाला, शिल्प (चित्र) जाननेवाला और व्यवहार में पटु होता है । बृहस्पति हो तो ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ, तथा वेदार्थ को जानने वाला होता है । शुक्र हो तो राजपुरुष, कामी और १०० वर्ष जीने वाला होता है । शनि हो

† किसी किसी पुस्तक में—"अगदङ्कारदैवज्ञगजव्यवहारिणश्च", ऐसा पाठ है ।

तो प्रसिद्ध (स्वकुलोचित) कर्म से जीविका करने वाला। राहु हो तो धनुष तीर चलाने वाला, चोर, विषविद्या जानने वाला, और लोहे का यन्त्र बनाने वाला अथवा रखने वाला होता है। केतु हो तो हाथियों को खरीदने बेचने वाला और चोर होता है।

अथ कारकांशस्थे रवौ राहुयुते शुभदिदृष्टे फलान्याह—

रविराहुभ्यां सर्पनिधनम् ॥२३॥ शुभदृष्टे तन्निवृत्तिः ॥२४॥ शुभमात्रसम्बन्धाज्जाङ्गुलिकः ॥२५॥ कुजमात्रदृष्टे गृहदाहकोऽग्निदो वा ॥२६॥ शुक्रदृष्टे न दाहः ॥२७॥ गुरुदृष्टे त्वासमीपगृहात् ॥२८॥

सं०—कारकांशे रविराहुभ्यां सर्पनिधनम् सर्पदंशनतो मरणमित्यादिकं स्पष्टमेवेति ॥

भा०—कारकांशस्थित सूर्य राहु से युत हो तो सर्प के काटने से मरण होता है। यदि उस पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो मरण नहीं होता। केवल शुभग्रह से ही सम्बन्ध हो तो विषवैद्य होता है। केवल मङ्गल की दृष्टि हो तो घर जलाने वाला, अथवा घर जलाने के लिये आग देने वाला होता है। यदि उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो दाह नहीं होता। यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो समीपस्थ गृह को भी जलाने वाला होता है। तथा वृद्धकारिका—

"कारकांशे भानु-राहू शुभषड्वर्गसंयुतौ।
विषवैद्यो भवेन्नूनं विषहर्ता विचक्षणः॥"
भौमेक्षिते कारकांशे भानुस्वर्भानुसंयुते।
अन्यग्रहा न पश्यन्ति स्ववेश्मपरदाहकः॥
यदि सौम्येक्षिते स्वांशे वह्निदो नैव जायते।
पापर्क्षे तु गुरोर्दृष्टे समीप—गृहदाहकः॥" इति।

अथ गुलिकसहिते स्वांशे ग्रहदृष्टिवशात् फलमाह—

सगुलिके विषदो विषहतो वा ॥२९॥ चन्द्रदृष्टे चौरापहृतधनश्चौरो वा ॥३०॥ बुधमात्रदृष्टे बृहद्बीजः ॥३१॥

सं०—सगुलिके इतिपदोपादानतः "रविराहुभ्यामित्यस्य निवृत्तिः" सगुलिके कारकांशे विषदोऽन्यस्मै विषप्रदः, स्वयं वा विषेण हतो भवति अन्यत् स्पष्टार्थमेव ॥

भा०—यदि गुलिक सहित कारकांश हो तो वह दूसरों के प्रति विष प्रयोग करने वाला होता अथवा खुद ही विष प्रयोग से मर जाता है। यदि उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो उसका धन चोर अपहरण कर लेता है, वा स्वयं चोर होता है। यदि गुलिक सहित कारकांश पर केवल बुध ही की दृष्टि हो तो बड़ा अण्डकोष वाला होता है।

अथ केतुयुते कारकांशे ग्रहदृष्टिसम्बन्धात्फलान्याह—

तत्र केतौ पापदृष्टे कर्णच्छेदः कर्णरोगो वा ॥३२॥ बुध-शुक्रदृष्टे दीक्षितः ॥३३॥ बुधशनिदृष्टे निर्वीर्यः ॥३४॥ बुधशुक्र-दृष्टे पौनःपुनिको दासीपुत्रो वा ॥३५॥ शनिदृष्टे तपस्वी प्रेष्यो वा ॥३६॥ शनिमात्रदृष्टे संन्यासाभासः ॥३७॥

सं०—"तत्र केतौ" इति प्रयोगात् "सगुलिक" इत्यस्य निवृत्तिः। तत्र कारकांशे केतौ पापदृष्टे जातकस्य कर्णच्छेदो वा कर्णरोगो भवति। अन्यत् स्पष्टार्थमेव ॥

भा०—कारकांश में केतु हो तथा पापग्रह से देखा जाता हो तो जातक के कान कट जाता अथवा कान में रोग होता है। यदि केतु युत-कारकांश पर शुक्र की दृष्टि हो तो दीक्षित (यज्ञादि में गृहीतमन्त्र) होता है। बुध और शनि से देखा जाता हो तो नपुंसक होता है। बुध शुक्र दोनों की दृष्टि हो तो पुनर्भूपुत्र वा दासी का पुत्र होता है (३५)। शनि की दृष्टि हो तो तपस्वी अथवा भृत्य होता है। केतुयुतकारकांश पर यदि केवल शनि की दृष्टि हो तो मिथ्या संन्यासी (केवल संन्यासी के भेष मात्र धारण करने वाला) होता है।

विशेष—यहाँ 'तत्र' शब्द से द्वितीय स्थान का ग्रहण न करके कार-कांश लेने में वृद्धवाक्य प्रमाण है। यथा—

(३५) जो स्त्री दूसरा पति करता है वह पुनर्भू कहलाती है।

"कारकांशे केतुयुते पापग्रहनिरीक्षते ।
श्रोत्रच्छेदो भवेन्नूनं कर्णरोगोऽथवा भवेत् ॥" इति

इसलिये 'तत्र' यह सप्तम्यर्थबोधक है ।

अथ केवलकारकांशे रविशुक्रदृष्टिफलमाह—

तत्र रविशुक्रदृष्टे राजप्रेष्यः ॥३८॥

सं०—तत्र तस्मिन् कारकांशे । 'तत्र' पदोपदानात् 'केतौ' इत्यस्य निवृत्तिर्ज्ञाता । अन्यत् स्पष्टम् ।

भा०—कारकांश में रवि शुक्र दोनों की दृष्टि हो तो राजा का भृत्य होता है ।

"कारकांशे यदा विप्र ! भृगुभास्करवीक्षिते । राजप्रेष्यो भवेत्......" ।

इत्यादि वचन से यहाँ भी 'तत्र' शब्द सप्तम्यर्थ बोधक ही है । फिर से तत्र शब्द के प्रयोग से केतु रहित कारकांश कहा गया है ॥

अथ कर्मणः प्राधान्यात् प्रथम कारकांशाद्दशम (कर्म) भावफलमाह—

बुधे, रिष्फे बुधदृष्टे वा मन्दवत् ॥३९॥ शुभदृष्टे स्थेयः ॥४०॥ रवौ गुरुमात्रदृष्टे गोपालः ॥४१॥

सं०—रिष्फे कारकांशाद्दशमे बुधे स्थिते बुधदृष्टे वा सति मन्दवत् शनितुल्यं "प्रसिद्धकर्माजीवः शनौ" इति पूर्वोक्तफलं ज्ञेयम् । शुभदृष्टे स्थेयो (विवादस्य निर्णेता, पुरोहितो वा) †भवति ॥ अन्यत् स्पष्टम् ॥

भा०—कारकांश से दशमस्थान में बुध हो वा बुध की दृष्टि हो तो शनिवत् पूर्वोक्त ("प्रसिद्धकर्माजीवः शनौ") फल समझना, अर्थात् वह बालक प्रसिद्ध कर्म से जीविका करने वाला होता है । शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो विवाद का निर्णयकारक वा पुरोहित होता है । कारकांश से १० में रवि हो तथा केवल गुरु से देखा जाता हो तो गायों का पालन करने वाला होता है ।

अथ स्वांशाच्चतुर्थस्य (गृहस्थानस्य) फलमाह—

दारे चन्द्रशुक्रदृग्योगाभ्यां प्रासादः ॥४२॥ उच्चग्रहेऽपि

† "स्थेयो विवादपक्षस्य निर्णेतरि पुरोहिते" इति मेदिनी ।

॥४३॥ राहुशनिभ्यां शिलागृहम् ॥४४॥ कुजकेतुभ्यामैष्टिकम् ॥४५॥ गुरुणा दारवम् ॥४६॥ तार्णं रविणा ॥४७॥

सं०—"दारे" इत्यादि षड्भिः सूत्रैः कारकांशाच्चतुर्थस्य (गृहस्थानस्य) फलमुक्तम् स्पष्टार्थम् ।

भा०—कारकांश से दार (चतुर्थ) स्थान में चन्द्र और शुक्र की दृष्टि हो तो उसे कोठे का (पक्का) मकान होता है। वा चतुर्थ स्थान में उच्च का ग्रह हो तो भी कोठा ही होता है। चतुर्थ स्थान में शनि राहु हो तो पत्थर का मकान, कुज केतु हो तो ईंटे का मकान, बृहस्पति हो तो लकड़ी का और रवि हो तो तृण का मकान होता है।

अथ कारकांशान्नवम (धर्म) भावस्य फलमाह—

समे शुभदृग्योगाद् धर्मनित्यः, सत्यवादी, गुरुभक्तश्च ॥४८॥ अन्यथा पापैः ॥४९॥ शनिराहुभ्यां गुरुद्रोहः ॥५०॥ रवि-गुरुभ्यां गुरावविश्वासः ॥५१॥

सं०—समे कारकांशान्नवमे धर्मनित्य इत्यादि फलं स्पष्टम् ।

भा०—कारकांश से नवमस्थान में शुभग्रह की दृष्टि वा योग हो तो धर्म में निरत, सत्यवादी और गुरुभक्त होता है। तथा पापग्रहकृत दृष्टि-योग से विपरीत फल समझना। नवम-स्थान में शनि राहु पड़े तो गुरुद्रोही होता है। रवि बृहस्पति की दृष्टि योग से गुरुजनों में अविश्वास होता है।

अथ कारकांशाद् द्वितीय-(दारादिधन)-भावस्य फलमाह—

तत्र भृग्वङ्गारकवर्गे पारदारिकः ॥५२॥ दृग्योगाभ्याम-धिकाभ्यामामरणम् ॥५३॥ केतुना प्रतिबन्धः ॥५४॥ गुरुणा स्त्रैणः ॥५५॥ राहुणार्थनिवृत्तिः ॥५६॥

सं०—तत्रेति पदोपादानात् 'समे' इति नवमस्य निवृत्तिः। तत्र कारकांशाद् द्वितीये भृग्वङ्गारकवर्गे शुक्रकुजयोरन्यतरस्य षड्वर्गे * पारदारिकः परस्त्रीलम्पटः

* षड्वर्गः—' क्षेत्रं होरा च द्रेष्काणो नवांशो द्वादशांशकः ।
त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं सर्वस्य समुदाहृतः ॥" इति गर्गः ॥

स्यात्। शेषं स्पष्टार्थमेव ॥

भा०—कारकांश से द्वितीय स्थान में शुक्र मङ्गल का षड्वर्ग हो तो वह जातक परस्त्री में निरत होता है। यदि उस पर शुक्र मङ्गल की दृष्टि योग भी हो तो मरणपर्यन्त परस्त्री में आसक्त रहता है। यदि उस पर केतु की दृष्टि वा योग हो तो उसका प्रतिबन्धक हो जाता है अर्थात् आ-मरण परस्त्री में आसक्त नहीं होता है। कारकांश से द्वितीय में बृहस्पति हो तो अपनी ही स्त्री में आसक्त रहता है। यदि द्वितीय में राहु हो तो स्त्री के कारण धन का नाश होता है॥

अथ कारकांशात् सप्तम (जाया) भावस्य फलमाह—

लाभे चन्द्रगुरुभ्यां सुन्दरी ॥५७॥ राहुणा विधवा ॥५८॥ शनिना वयोधिका, रोगिणी, तपस्विनी वा ॥५९॥ कुजेन विकलाङ्गी ॥६०॥ रविणा स्वकुले गुप्ता च ॥६१॥ बुधेन कलावती ॥६२॥

सं०—कारकांशात् सप्तमस्थानस्य फलबोधकं सूत्रषट्कमिति स्फुटार्थमेव।

भा०—कारकांश से सप्तम में चन्द्र बृहस्पति हो तो सुन्दरी स्त्री (पत्नी) होती है। सप्तम राहु हो तो विधवा स्त्री से सम्बन्ध होता है। शनि हो तो अपने से वयस में अधिक, वा रोगिणी, अथवा तपस्विनी होती है। सप्तम में मङ्गल हो तो किसी अङ्ग से हीन (वा दुर्बल अङ्गवाली) स्त्री हो। सप्तम में रवि हो तो अपने कुल में रक्षिता और 'च' कार से विकलाङ्गी भी होती है। बुध हो तो कलाओं (गीतवाद्य-चित्रादिकों) को जानने वाली होती है।

अथ—प्रथमस्त्रीसंयोगस्थानस्वरूपं (गृहरूपचतुर्थभवनात्) आह—

चापे चन्द्रेणानावृते देशे ॥६३॥

सं०—चापे कारकांशात् चतुर्थे चन्द्रेणानावृते देशेऽनाच्छादितस्थाने "प्रथमस्त्रीसम्भोगः स्यात्"। कैश्चित् "चापे चतुर्थे कर्कराशौ" इत्यर्थः कृतस्तदयुक्तमिव। यतो गृह (स्थान) स्य विचारश्चतुर्थभावादेव भवति "गृहं भूमिश्च तुर्यतः" इत्याद्युक्तेरिति विवेचनीयं विद्वद्भिरिति।

भा०—कारकांश से ४ चतुर्थ में चन्द्रमा हो तो स्त्री का प्रथम सम्भोग अनाच्छादित स्थान में होता है।

कोई 'चाप' शब्द से कर्कराशि ग्रहण करते हैं, किन्तु वह युक्त नहीं मालूम होता। क्योंकि गृह और भूमि का विचार चतुर्थ स्थान से ही होता है; इसलिये 'चाप' शब्द से चतुर्थ स्थान ही सङ्गत है।

अथ कारकांशात् तृतीयस्थानस्य फलमाह—

कर्मणि पापे शूरः ॥६४॥ शुभे कातरः ॥६५॥

सं०—कारकांशात् कर्मणि तृतीये क्रूरग्रहे शूरः पराक्रमी। शुभे शुभग्रहे सति कातरो भीरुर्भवति।

भा०—कारकांश से तृतीय में पापग्रह हो तो पराक्रमी; शुभग्रह हो तो डरपोक होता है।

मृत्युचिन्तयोः पापे कर्षकः ॥६६॥

सं०—तृतीय-षष्ठयोः पापे कर्षकः कृषिकर्ता भवति।

भा०—कारकांश से ३; ६ में पापग्रह हो तो खेती करनेवाला होता है।

समे गुरौ विशेषेण ॥६७॥

सं०—समे नवमे बृहस्पतौ विशेषेण कर्षको भवति।

भा०—कारकांश से ३, ६ में पापग्रह हो और ९ में बृहस्पति भी हो तो विशेष करके कृषि करनेवाला होता है।

अथ कारकांशाद् द्वादशस्य फलमाह—

उच्चे शुभे शुभलोकः ॥६८॥ केतौ कैवल्यम् ॥६९॥ क्रियचापयोर्विशेषेण ॥७०॥ पापैरन्यथा ॥७१॥

सं०—उच्चे द्वादशे, शुभे शुभग्रहे शुभलोकः स्वर्गादिप्राप्तिः। द्वादशे केतौ कैवल्यं मुक्तिः। क्रियचापयोर्मीनकर्कयोर्द्वादशस्योर्विशेषेण—(शुभलोकेष्वप्युत्कृष्टलोकः, चतुर्विधमुक्तिष्वप्युत्कृष्टा मुक्तिरित्यर्थः)। द्वादशे पापैः पापग्रहैः अन्यथा (न मुक्तिः, तथा नरकाद्यशुभलोकप्राप्तिश्च)।

भा०—कारकांश से द्वादश स्थान में शुभग्रह हो तो स्वर्गादि शुभ-

लोक की प्राप्ति होती है। केतु हो तो मुक्ति होती है। यदि द्वादश में शुभग्रह रहे तथा मीन अथवा कर्क राशि हो तो विशेषकर अर्थात् स्वर्गादि लोक में भी उत्कृष्ट (सत्य) लोक की प्राप्ति; तथा चतुर्विध-मुक्ति में उत्कृष्ट (सायुज्य) मुक्ति होती है। द्वादश में पापग्रह हो तो अन्यथा अर्थात् न शुभलोक प्राप्ति, न मुक्ति ही होती है।

रविकेतुभ्यां शिवे भक्तिः ॥७२॥ चन्द्रेण गौर्याम् ॥७३॥ शुक्रेण लक्ष्म्याम् ॥७४॥ कुजेन स्कन्दे ॥७५॥ बुधशनिभ्यां विष्णौ ॥७६॥ गुरुणा साम्बशिवे ॥७७॥ राहुणा तामस्यां दुर्गायाञ्च ॥७८॥ केतुना गणेशे स्कन्दे च ॥७९॥ पापर्क्षे मन्दे क्षुद्रदेवतासु ॥८०॥ शुक्रे च ॥८१॥

सं०—कारकांशाद्द्वादशे 'रविकेतुभ्यामित्यादिना' देवताभक्तिं कथयति । स्पष्टार्थम् ।

भा०—कारकांश से द्वादश स्थान में रविकेतु हो तो शिव में भक्ति होती है। चन्द्रमा हो तो गौरी में; शुक्र हो तो लक्ष्मी में; मंगल हो तो कार्तिकेय में, बुध और शनि हो तो विष्णु में, बृहस्पति हो तो गौरीसहित शिव में, राहु हो तो 'भूतादि देव देवियों में तथा दुर्गा में भी, केतु हो तो गणेश और कार्तिकेय में, द्वादश में पाप राशि हो तथा उसमें शनि अथवा शुक्र हो तो क्षुद्र देवता (पिशाच आदि) में भक्ति होती है।

अथामात्यकारकात् षष्ठेऽप्येवमेव विचार्यमित्याह—

अमात्यदासे चैवम् ॥८२॥

सं०—अमात्यकारकाद् दासे षष्ठस्थानेऽपि एवमुपरोक्तग्रहयोगे तत्तद्देवता-भक्तिर्ज्ञातव्येत्यर्थः ।

भा०—जिस प्रकार आत्मकारकांश के द्वादश स्थान से देवता भक्ति का विचार है, इसी प्रकार अमात्य कारकांश के षष्ठ स्थान से उपरोक्त ग्रहों के योग से तत्तद्देवता सम्बन्धिनी भक्ति होती है।

अथ मन्त्रसिद्धित्वमाह—

त्रिकोणे पापद्वये मान्त्रिकः ॥८३॥ पापदृष्टे निग्राहकः ॥८४॥ शुभदृष्टेऽनुग्राहकः ॥८५॥

सं०—आत्मकारकांशात् त्रिकोणे (पञ्चमनवमयोः) पापद्वये मान्त्रिको मन्त्रशास्त्रज्ञो भवति। कारकांशात् त्रिकोणे पापद्वययुते पापदृष्टे च निग्राहको निग्रहकर्ता 'निग्रहो दण्डः'। पापद्वययुते कारकांशात् त्रिकोणे शुभदृष्टेऽनुग्रहकर्ता भवति।

भा०—कारकांश से त्रिकोण (५।९) में दो पापग्रह हो तो मन्त्र जानने वाला होता है। उस पर यदि पापग्रह की दृष्टि भी हो तो निग्रह (दण्ड) करनेवाला होता है। यदि शुभग्रह की दृष्टि हो तो अनुग्रह करने वाला होता है।

शुक्रेन्दौ शुक्रदृष्टे रसवादी ॥८६॥ बुधदृष्टे भिषक् ॥८७॥

सं०—शुक्रेन्दौ शुक्रे (१) कारकांशे इन्दुरिति शुक्रेन्दुस्तस्मिन् शुक्रेन्दौ शुक्रदृष्टे रसवादी रसायनवेत्ता भवति। बुधदृष्टे भिषग् वैद्यो भवति।

भा०—कारकांश में चन्द्रमा हो उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो रसायन विद्या जानने वाला होता है। कारकांश में चन्द्रमा हो उसपर बुध की दृष्टि हो तो वैद्य होता है।

चापे चन्द्रे शुक्रदृष्टे पाण्डुश्वित्री ॥८८॥ कुजदृष्टे महारोगः ॥८९॥ केतुदृष्टे नीलकुष्ठम् ॥९०॥

सं०—चापे कारकांशाच्चतुर्थे "चन्द्रे" इत्यादि स्पष्टार्थम्।

भा०—कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो तथा शुक्र से देखा जाता हो तो पाण्डु श्वित्र (श्वेतकुष्ठ) रोग वाला होता है। तथा चतुर्थ में चन्द्रमा हो उसपर मङ्गल की दृष्टि हो तो महारोगी (कुष्ठी) होता है। कारकांश से चतुर्थ में चन्द्र पर केतु की दृष्टि हो तो नील कुष्ठ वाला होता है।

तत्र मृतौ वा कुजराहुभ्यां क्षयः ॥९१॥ चन्द्रदृष्टौ निश्च-

येन ॥९२॥ कुजेन पिटकादिः ॥९३॥ केतुना ग्रहणी जलरोगो वा ॥९४॥ राहुगुलिकाभ्यां क्षुद्रविषाणि ॥९५॥

सं०—"मृतौ वा" इति पदोपादानात् "तत्र चापे (चतुर्थे)" इत्यस्य पुनरावृत्तिः। तत्र तस्मिन् कारकांशाच्चतुर्थे, मृतौ कारकांशात्पञ्चमे वा कुजराहुभ्यां क्षयो यक्ष्मादिरोगः स्यादन्यत् स्पष्टार्थम्।

भा०—कारकांश से चतुर्थ वा पञ्चम में मङ्गल राहु दोनों हों तो क्षय रोग होता है। उसपर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो निश्चय करके क्षयरोग होता है। कारकांश से चतुर्थ वा पञ्चम में केवल मङ्गल हो तो पिटकादि फोड़ा आदि—रोग वाला होता है। केवल केतु उक्त स्थान में हो तो संग्रहणी अथवा जल रोग होता है। उसी चतुर्थ वा पञ्चम में राहु और गुलिक हो तो क्षुद्रविष (बिच्छू आदि के काटने) से कष्ट होता है॥

तत्र शनौ धानुष्कः ॥९६॥ केतुना घटिकायन्त्री ॥९७॥ बुधेन परमहंसो लगुडी वा ॥९८॥ राहुणा लोहयन्त्री ॥९९॥ रविणा खड्गी ॥१००॥ कुजेन कुन्ती ॥१०१॥

सं०—'तत्र' इति पुनरुपादानात् "मृतौ वा" इत्यस्य निवृत्तिः तत्र (तस्मिन्) कारकांशात् चतुर्थे शनौ धानुष्कः धनुर्धारी भवतीत्यादि स्पष्टार्थमेव।

भा०—पूर्व सूत्रों में चतुर्थ और पञ्चम में तुल्य फल कहा गया है। अब फिर चतुर्थमात्र का फल कहते हैं—कारकांश से चतुर्थ में शनि हो तो धनुर्धारी (धनुषबाण चलानेवाला) होता है। केतु हो तो घड़ीयन्त्र बनाने वाला होता है। बुध हो तो परमहंस अथवा दण्डी होता है। राहु हो तो लोहयन्त्र बनाने वाला होता है। रवि हो तो तलवार रखने वाला, मङ्गल हो तो कुन्त (भाला) रखनेवाला होता है।

अथ कारकांशतत्पञ्चमयोः फलान्याह—

मातापित्रोश्चन्द्रगुरुभ्यां ग्रन्थकृत् ॥१०२॥ शुक्रेण किञ्चिदूनम् ॥१०३॥ बुधेन ततोऽपि ॥१०४॥ शुक्रेण कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च ॥१०५॥ गुरुणा सर्वविद्ग्रान्थिकश्च ॥१०६॥ न

वाग्मी ॥१०७॥ विशिष्य वैयाकरणो वेदवेदान्तविच्च ॥१०८॥ सभाजडः शनिना ॥१०९॥ बुधेन मीमांसकः ॥११०॥ कुजेन नैयायिकः ॥१११॥ चन्द्रेण सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञो गायकश्च ॥११२॥ रविणा वेदान्तज्ञो गीतज्ञश्च ॥११३॥ केतुना गणितज्ञः ॥११४॥ गुरुसम्बन्धेन सम्प्रदायसिद्धिः ॥११५॥

सं०—मातापित्रोः (माता पञ्चमः, पिता प्रथमस्तयोः) आत्मकारकांशात् पञ्चमे, आत्मकारकांशे वेत्यर्थः चन्द्रगुरुभ्यां ग्रन्थकृदित्यादि स्फुटम् ।

भा०—कारकांश से पञ्चम में वा कारकांश में चन्द्रमा बृहस्पति दोनों हों तो ग्रन्थकार होता है। चन्द्रमा और शुक्र दोनों हो तो पूर्वयोग की अपेक्षा कुछ न्यून ग्रन्थकार होता है। बुध हो तो उससे भी कुछ न्यून ग्रन्थकार होता है। केवल शुक्र से कवि, वक्ता, और काव्य को जानने वाला भी होता है। बृहस्पति हो तो सर्व विद्यावेत्ता और ग्रन्थकार भी होता है। किन्तु वक्ता नहीं होता, विशेष कर व्याकरण और वेद वेदान्त जानने वाला होता है। शनि हो तो सभा में मूक होता है। बुध हो तो मीमांसा शास्त्र जानने वाला; मङ्गल हो तो नैयायिक होता है। केवल चन्द्रमा उक्त स्थान में हो तो सांख्य, योग, साहित्य और गान विद्या जानने वाला होता है। केवल सूर्य हो तो वेदान्त गीत जानने वाला होता है। उक्त स्थान में केतु हो तो गणित (ज्यौतिष) जानने वाला होता है। उपरोक्त योगों में यदि बृहस्पति का सम्बन्ध (योग दृष्टि) हो तो उस सम्प्रदाय में वह सिद्ध होता है।

भाग्ये चैवम् ॥११६॥ सदा चैवमित्येके ॥११७॥ भाग्ये केतौ पापदृष्टे स्तब्धवाक् ॥११८॥

सं०—भाग्ये कारकांशाद् द्वितीये चैवमुपरोक्तफलं ज्ञेयम्। सदा कारकांशात् तृतीयेऽप्येवं फलं ज्ञेयमित्येके (केचित्) कथयन्ति । भाग्ये द्वितीये केतौ पापदृष्टे स्तब्धवाक् (झटिति वक्तुमक्षमो) भवति ।

भा०—जिस प्रकार ऊपर (कारकांश और उससे पञ्चम से) फल

कहा गया है उसी प्रकार कारकांश से द्वितीय स्थान में भी समझना। तथा तृतीय स्थान से भी इसी प्रकार फल होता है ऐसा भी कोई कहते हैं। कारकांश से द्वितीय में केतु हो उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो वह शीघ्र बोलने में असमर्थ होता है।

स्वपितृपदाद् भाग्यरोगयोः पापसाम्ये केमद्रुमः ॥११९॥ चन्द्रदृष्टौ विशेषेण ॥१२०॥ सर्वेषां चैव पाके ॥१२१॥

सं०—स्वश्च पिता च पदं चेति स्वपितृपदं तस्मात् स्वपितृपदात् (कारकात्, लग्नात्, लग्नपदाद्वेत्यर्थः) भाग्यरोगयोर्द्वितीयाष्टमयोः पापसाम्ये केमद्रुमो नाम योगो भवति। चन्द्रदृष्टौ विशेषेण पूर्णरूपेण केमद्रुमयोगो भवति। सर्वेषां ग्रह-राशीनां फलानि पाके स्वस्वदशायां भवन्ति।

भा०—कारक से वा लग्न से, अथवा लग्नारूढ़ से द्वितीय और अष्टम स्थान में पापग्रह की समता हो तो केमद्रुम योग होता है। उस पर यदि चन्द्रमा की दृष्टि हो तो पूर्ण योग होता है। उपरोक्त ग्रह अथवा राशियों का फल अपनी २ दशा में होता है।

तथा च वृद्धकारिका—

"लग्नाल्लग्नपदात्स्वाद्वा पापौ श्री (२) हानि (८) गौ यदि।
केवलौ सग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाऽशुभौ।
चन्द्रदृष्टौ विशेषेण योगः केमद्रुमो मतः" ॥ इति।

इति—चौगमानिवासिकाशीस्थसंन्यासिसंस्कृतमहाविद्यालयप्रधानाध्यापक-
ज्यौ० आ० पं० श्रीसीतारामशर्मकृतायां जैमिनिसूत्रटीकायां
प्रथमाध्याये द्वितीयपादः।

अथ प्रथमाध्याये तृतीयपादः प्रारभ्यते तत्र पदमवलम्ब्य फलं वाच्यमित्याह—

अथ पदम् ॥१॥

सं०—अथ शब्दोऽधिकारार्थोऽनन्तरबोधको वा ज्ञेयः। पद "यावदीशाश्र-यपदमृक्षाणाम्" इति पूर्वोक्तसिद्ध ज्ञेयम्। अस्मिन्नधिकारे लग्नपदमवलम्ब्य फलं ज्ञेयमित्यर्थः।

भा०—अब तृतीयपाद में पदाधिकार कहते हैं। इसमें लग्न के पद से फल समझना।

व्यये सग्रहे ग्रहदृष्टे श्रीमन्तः ॥२॥ शुभैर्न्याय्यो लाभः ॥३॥ पापैरमार्गेण ॥४॥ उच्चादिभिर्विशेषात् ॥५॥

सं०—व्यये लग्नपदादेकादशे । शेषं स्पष्टम् ।

भा०—लग्नारूढ से ११ एकादशस्थान किसी ग्रह से युत वा दृष्ट हो तो जातक धनवान होता है। शुभग्रह से युत वा दृष्ट हो तो नीति-मार्ग से धन लाभ होता है। पापग्रह से युत दृष्ट हो तो अनीति मार्ग से धन लाभ होता है। एकादश में उच्च (आदि शब्द से) मूल त्रिकोण स्वराशि-मित्र राशि के ग्रह हों तो विशेष करके लाभ होता है।

नीचे ग्रहदृग्योगाद् व्ययाधिक्यम् ॥६॥ रविराहुशुक्रैर्नृपात् ॥७॥ चन्द्रदृष्टौ निश्चयेन ॥८॥ बुधेन ज्ञातितो विवादाद्वा ॥९॥ गुरुणा करमूलात् ॥१०॥ कुजशनिभ्यां भ्रातृमुखात् ॥११॥ एतैर्व्ययं एवं लाभः ॥१२॥

सं०—नीचे लग्नारूढाद् द्वादशे ग्रहयोगाद् व्ययाधिक्यम् । शुभग्रहयोगात् शुभकर्मणि व्ययः । अशुभग्रहयोगादशुभकर्मणीति ज्ञेयम् । अन्यत् स्पष्टार्थम् ।

भा०—लग्नपद से द्वादशस्थान ग्रहयुत हो तो अधिक खर्च होता है। (शुभग्रह से शुभकार्य में, पाप ग्रह से पाप कर्म में खर्च समझना) पद से १२ में रवि, राहु वा शुक्र हो तो राजा के द्वारा व्यय होता है। चन्द्रमा की दृष्टि हो तो निश्चय करके अधिक व्यय होता है। पद से १२ में बुध हो तो गोतिया (दायाद) अथवा विवाद (कलह आदि) के कारण व्यय (खर्च) होता है। बृहस्पति हो तो अपने हाथ से खर्च होता है। मङ्गल, शनि हो तो भाई आदि के द्वारा व्यय होता है। द्वादश में जिन ग्रहों से जिनके द्वारा व्यय कहा गया है, एकादश में उन ग्रहों से उन्हीं के द्वारा लाभ भी समझना।

लाभे राहुकेतुभ्यामुदररोगः ॥१३॥

सं०—लाभे पदात्सप्तमे। शेषं स्पष्टम्।

भा०—पद से सप्तम में राहु अथवा केतु हो तो उदर रोग होता है।

तत्र केतुना झटिति ज्यानि लिङ्गानि ॥१४॥

सं०—तत्र पदाद् द्वितीये केतुना झटिति शीघ्र (अनवसर एवेत्यर्थः) ज्यानि लिङ्गानि (वार्धक्यचिह्नानि) भवन्ति।

भा०—पद से द्वितीय स्थान में केतु हो तो जल्दी ही वृद्धावस्था के चिह्न (केश पकना, दाँत टूटना आदि) हो जाते हैं।

चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः ॥१५॥ उच्चेन वा ॥१६॥

सं०—पदाद् द्वितीये चन्द्रगुरुशुक्रेषु स्थितेषु, उच्चेन उच्चाश्रितग्रहेण वा श्रीमन्तो राजानस्तत्तुल्या वा भवन्ति।

भा०—पद से द्वितीय में चन्द्र, गुरु, शुक्र हो वा उच्च के ग्रह हो तो श्रीमान् (राजा वा धनवान्) होता है।

स्वांशवदन्यत् प्रायेण ॥१७॥

सं०—अन्यत् फलं प्रायेण स्वांशवत् (स्वांशप्रकरणे यथोक्तं तद्वदत्रापि) ज्ञेयम्। प्रायेणेति पादोपादानाद् बाधकाभावे स्वांशोक्तफलं ग्राह्यमन्यथा नेति सूचितम्॥

भा०—और (अवशेष) फल आत्मकारकांशप्रकरणोक्तवत् प्रायः हुआ करता है। "प्रायेण" इस शब्द से बाधक के अभावमें स्वांशवत् फल समझना, अन्यथा नहीं।

लाभपदे केन्द्रे त्रिकोणे वा श्रीमन्तः ॥१८॥ अन्यथा दुःस्थे ॥१९॥ केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु द्वयोर्मैत्री ॥ २० ॥ रिपुरोग-चिन्तासु वैरम् ॥२१॥

सं०—लग्नपदात् केन्द्रे त्रिकोणे वा लाभपदे (सप्तमभावपदे) स्थिते सति, श्रीमन्तो भवन्ति। दुःस्थे षष्ठाष्टमद्वादशस्थानस्थिते सति अन्यथा दरिद्रा भवन्तीत्यर्थः। लग्नपदात् सप्तमपदे केन्द्रत्रिकोणोपचयेषु (षष्ठरहितेषु) स्थिते द्वयोः

स्त्रीपुरुषयोर्मैत्री । रिपुरोगचिन्तासु द्वादशाष्टमषष्ठेषु स्थिते सप्तमपदे द्वयोर्वैरं शत्रुता स्यात् ॥

भा०—लग्नपद से केन्द्र (१।४।७।१०) त्रिकोण (५।९) में सप्तम भाव का पद हो तो धनवान् होता है । ६।८।१२ इन स्थान में सप्तम का पद पड़े तो दरिद्र होता है । लग्नपद से केन्द्र त्रिकोण तथा षष्ठरहित उपचय (३।१०।११) में सप्तम का पद पड़े तो दोनों (स्त्री पुरुष) में मित्रता (प्रेम) हो । यदि १२,८,६ इनमें से किसी स्थान में सप्तम का पद हो तो स्त्री पुरुष में शत्रुता होती है ।

विशेष—यहाँ मूलकन्दलीकार ने "दुःस्थे" के स्थान में "दुःस्थाः" ऐसा पाठ बना कर मूलकन्दली में "सप्तमपदं षष्ठाष्टमद्वादशगतं न भवन्तीति द्रष्टव्यम्", इस प्रकार प्रमाद से लिखा । कारण लग्नपद से सप्तम भाव का पद षष्ठाष्टम में हो सकता है । यथा—मेषलग्न, उसके स्वामी मङ्गल कर्क में हो तथा सप्तम तुला के स्वामी शुक्र वृश्चिक में हो तो लग्न पद (कर्क) से सप्तम का पद (धनु) षष्ठस्थान में पड़ा इत्यादि । अतः 'दुःस्थे' ऐसा ही पाठ ठीक है ।

तथा उपरोक्त रीति से यदि पञ्चम भाव आदि के पद केन्द्रादि में पड़े तो पुत्र आदि से मैत्री तथा वैर समझना । तथा वृद्धकारिका—

> "लग्नारूढं दारपदं मिथः केन्द्रगतं यदि ।
> त्रिलाभे वा त्रिकोणे वा तदा राजान्यथाऽधमः ॥
> एवं पुत्रादिभावानामपि पित्रादिमित्रता ।
> जातकद्वयमालोक्य चिन्तनीयं विचक्षणैः" ॥ इति

पत्नीलाभयोर्दिष्ट्या निराभासार्गलया ॥२२॥ शुभार्गले धनसमृद्धिः ॥२३॥

सं०—पत्नीलाभयोः (लग्नपद-तत्सप्तमयोः) निराभासार्गलया दिष्ट्या भाग्यं भवति । तथा लग्नपद-तत्सप्तमयोः शुभार्गले शुभग्रहकृतार्गले सप्रतिबन्धकेऽपि धनसमृद्धिर्भवति ॥

भा०—लग्नपद और उससे सप्तम में निष्प्रतिबन्धक अर्गला हो तो भाग्यवान होता है। यदि उक्त दोनों स्थान में शुभग्रहकृत अर्गला सप्रतिबन्धक भी हो तो धन की वृद्धि होती है। तथा पापग्रहकृतार्गला में सामान्य रूप से धन होता यह अर्थात् सिद्ध होता है।

अथ राजयोगानाह—

जन्म-काल-घटिकास्वेकदृष्टासु राजानः ॥२४॥ पत्नीलाभयोश्च राश्यंशकदृक्काणैर्वा ॥२५॥ तेष्वेकस्मिन्न्यूने न्यूनम् ॥२६॥ एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥२७॥

सं०—जन्मकालघटिकास्वेकदृष्टासु जन्मलग्न-होरालग्न-घटीलग्नेष्वेकग्रहदृष्टेषु राजानो भूपतयो भवन्ति। वा जन्मलग्न-होरालग्न-घटीलग्नकुण्डलीषु पत्नीलाभयोश्च लग्नसप्तमभावयो राश्यंशकदृक्काणैरेकग्रहदृष्टयोश्च राजानो भवन्ति तेषूपरोक्त-जन्मलग्नादि-तत्रत्यराश्यंशकदृक्काणेष्वेकस्मिन्न्यूने न्यूनं राजयोगस्य न्यूनत्वं स्यादित्यर्थः। एवं अंशतो दृक्काणतश्च जन्म-होरा-घटीलग्नाश्रितनवांशकुण्डलीतः, तथा जन्म-होरा-घटीलग्नाश्रितदृक्काणकुण्डलीतश्चाप्येवमुक्तरीत्या राजयोगा भवन्ति॥

भा०—जन्मलग्न होरालग्न, घटीलग्न, इन तीनों पर किसी एक ग्रह की दृष्टि हो तो वह जातक राजा होता है। अथवा जन्मलग्न कुण्डली होरालग्न कुण्डली घटीलग्न-कुण्डली तीनों में लग्न और सप्तम भाव पर राशि, नवांश, दृक्काण वश से एक ग्रह की दृष्टि से भी राजयोग होते हैं। उक्त तीनों लग्नकुण्डली के राशि अंश दृक्काण (तीनों) वश से लग्न सप्तम (दोनों) पर एक ग्रह को दृष्टि हो तो पूर्ण राजयोग समझना। उनमें एक भी न्यून हो तो राजयोग में भी न्यूनता समझना। इसी प्रकार तीनों लग्न की नवांश कुण्डली और द्रेष्काण कुण्डली से भी राजयोग का विचार करना॥ तथा वृद्धकारिका—

"विलग्न-घटिकालग्न-होरालग्नानि पश्यति।
उच्चग्रहे राजयोगो लग्नद्वयमथापि वा॥
राशेर्दृक्काणतोऽप्याच्च राशेरंशादथापि वा।
यद्वा राशिदृक्काणाभ्यां लग्नद्रष्टा तु योगदः॥"

भावार्थ—लग्न घटीलग्न-होरालग्न तीनों को उच्चस्थ (वा अन्य) भी एक ग्रह देखे तो राजयोग होता है। अथवा उक्त तीनों लग्न में किसी दो को एक ग्रह देखे तो राजयोग होता है। उनमें राशि, नवांश, दृक्काण तीनों के वश से वा पृथक् पृथक् राशि, अंश, दृक्काण वश वा राशि द्रेष्काण वश वा राशिनवांश वश, वा द्रेष्काणनवांश वश दृष्टि से अनेक प्रकार के राजयोग होते हैं।

शुक्रचन्द्रयोर्मिथो दृष्टयोः सिंहस्थयोर्वा यानवन्तः ॥२८॥ शुक्र-कुज-केतुषु वैतानिकाः ॥२९॥

सं०—यत्र कुत्रस्थयोः शुक्रचन्द्रयोर्मिथो दृष्टयोः, वा मियः सिंहस्थयोः तृतीयस्थयोः (शुक्रात् तृतीये चन्द्रे, चन्द्रात् तृतीये चन्द्रे तृतीये शुक्रे वा) यानवन्तो भवन्ति। शुक्र-कुज-केतुषु मियोदृष्टेषु वैतानिका वितानादिराजचिह्नवन्तो भवन्ति।

भा०—शुक्र चन्द्रमा में परस्पर दृष्टि हो वा शुक्र चन्द्रमा को देखता हो वा चन्द्रमा से शुक्र तृतीय में हो तो वाहनवान् (अनेक प्रकार के सवारी वाला) होता है। तथा शुक्र, मङ्गल, केतु इनमें परस्पर दृष्टि हो तो वितान (चन्दोवा शामियाना, तम्बू, कनात् आदि) रखने वाला होता है।

अथ प्रसङ्गात् कारकादितोऽपि राजयोगमाह—

स्वभाग्यदारमातृभावसमेषु शुभेषु राजानः ॥३०॥ कर्मदासयोः पापयोश्च ॥३१॥ पितृलाभाधिपाच्चैवम् ॥३२॥ मिश्रे समाः ॥३३॥ दरिद्रा विपरीते ॥३४॥

सं०—स्वात् भाग्य-दारमातृभावसमेषु (द्वितीयचतुर्थपञ्चमाष्टमनवमस्थानेषु) शुभग्रहेषु राजानो भवन्ति, कारकात् कर्मदासयोस्तृतीयषष्ठयोः पापयोः पापग्रहयोश्च राजानो भवन्ति। पितृलाभाधिपात् लग्नेशात् सप्तमेशाच्चैव राजयोगो ज्ञेयः। मिश्रे शुभपापमिश्रिते तु समा राजतुल्या भवन्ति। विपरीते दरिद्रा निर्धना भवन्ति।

भा०—आत्मकारक से २।४।५।८।९ इन भावों में शुभ ग्रह हो तो राजा होता है। तथा कारक से ३।६ में पाप ग्रह हो तब भी राजा होता है। इसी प्रकार लग्नेश तथा सप्तमेश से भी समझना। शुभ ग्रह

और पाप दोनों मिले हुए हों तो राजा के तुल्य होता है। विपरीत ग्रह स्थिति से (अर्थात् शुभ के स्थान में पाप, पाप के स्थान में शुभ ग्रह हो तो) दरिद्र होता है।

मातरि गुरौ शुक्रे चन्द्रे वा राजकीयाः ॥३५॥ कर्मणि दासे वा पापे सेनान्यः ॥३६॥

सं०—कारकात् लग्नसप्तमेशाच्च मातरि पञ्चमे। शेषं स्पष्टम्।

भा०—कारक वा लग्नेश, सप्तमेश से ५ में बृहस्पति, शुक्र वा चन्द्रमा हो तो राज सम्बन्धी पुरुष होता है। तृतीय वा षष्ठ में पाप ग्रह हो तो सेनापति होता है।

अथात्मकारकलग्नोपरि ग्रहदृष्टिवशात् फलमाह—

स्वपितृभ्यां कर्म-दासस्थदृष्ट्या तदीशदृष्ट्या मातृनाथदृष्ट्या च धीमन्तः ॥३७॥ दारेशदृष्ट्या सुखिनः ॥३८॥ रोगेशदृष्ट्या दरिद्राः ॥३९॥ रिपुनाथदृष्ट्या व्ययशीलाः ॥४०॥ स्वामिदृष्ट्या प्रबलाः ॥४१॥

सं०—स्वपितृभ्यां आत्मकारक-लग्नाभ्यां कर्मदासस्थदृष्ट्या तृतीयषष्ठस्थग्रहदृष्ट्या, वा तदीशदृष्ट्या तृतीयेश-षष्ठेशदृष्ट्या वा मातृनाथदृष्ट्या पञ्चमेशदृष्ट्या धीमन्तो भवन्ति। शेषं स्पष्टम्॥

भा०—आत्मकारक और लग्न के ऊपर यदि कारक और लग्न से तृतीय षष्ठस्थ ग्रह की दृष्टि हो, वा तृतीयेश, षष्ठेश की दृष्टि हो वा पञ्चमेश को दृष्टि हो तो बुद्धिमान होता है॥ कारक और लग्न पर चतुर्थेश की दृष्टि हो तो सुखी होता है। अष्टमेश की दृष्टि हो तो दरिद्र होता है। द्वादशेश की दृष्टि हो तो व्यर्थ खर्च करनेवाला होता है॥ यदि लग्न और कारकाश्रित राशि पर अपने स्वामी की दृष्टि हो तो उक्त योग प्रबल होता है॥

अथ बन्धनादियोगमाह—

पश्चाद्रिपुभाग्ययोर्ग्रहसाम्ये बन्धः ॥४२॥ कोणयो रिपुजाययोः

कीटयुग्मशोर्दाररिष्फयोश्च ॥४३॥ एवमृक्षाणां तदीशानां च ॥४४॥ शुभसम्बन्धे निरोधमात्रं, पापसम्बन्धाच्छृङ्खलाप्रहारादयः ॥४५॥

सं०—पश्चात् लग्नात् कारकाच्च । शेषं स्पष्टम् ॥

भा० – लग्न वा कारक से द्वितीय द्वादश में तुल्यसंख्यक ग्रह हो तो बन्धन (जेल) होता है । इसी प्रकार नवम पञ्चम में, वा द्वादश षष्ठ में, वा एकादश तृतीय में अथवा चतुर्थ दशम में ग्रह की समता हो तो बन्धन होता है । उक्त बन्धन (२।१२ आदि) स्थान और उसके स्वामी को शुभ ग्रह से सम्बन्ध रहै तो निरोधमात्र (बिना परिश्रम का जेल) तथा पापग्रह से सम्बन्ध रहै तो कठिन (वेड़ी तथा बेंत के प्रहार आदि सहित) बन्धन होता है ॥

शुक्राद् गौणपदस्थो राहुः सूर्यदृष्टो नेत्रहा ॥४६॥

सं०—शुक्राल्लग्नात् गौण (५३, शे ५) पदस्थो वक्ष्यमाणोपपदगतो राहुः सूर्यदृष्टो नेत्रहा नेत्रघातको भवति ॥

भा०—लग्न से गौण (५) पञ्चम के पद (वक्ष्यमाण उपपद) में राहु यदि सूर्य से देखा जाता हो तो नेत्रघातक होता है ॥

अथ शुभफलं कथयन्नधिकारं समापयति—

स्वदारगयोः शुक्रचन्द्रयोरातोद्यं राजचिह्नानि च ॥४७॥

सं०—स्वाद्दारगयोश्चतुर्थस्थयोः शुक्रचन्द्रयोरातोद्यं वाद्यं राजचिह्नानि च्छत्रादीनि च भवन्ति ॥

भा०—कारक से चतुर्थ स्थान में शुक्र और चन्द्रमा दोनों हो तो अनेक प्रकार के बाजे (नगाड़ा आदि) और छत्र चामर आदि राजचिह्न होते हैं ॥

इति—चौगमानिवासि-काशीस्थसंन्यासिसंस्कृतमहाविद्यालयप्रधानाध्यापक-
ज्यौ० आ० पं० श्रीसीतारामशर्मकृत-जैमिनिसूत्रटीकायां
प्रथमाध्याये तृतीयः पादः ।

अथोपपदात्फलं विवक्षुः प्रथममुपपदं (गौणपदं) निरूपयति—

उपपदं पदं पित्रनुचरात् ॥ १ ॥

सं०—पित्रनुचरात् ($\frac{२६०२१}{१२}$, शे ५ सुतभावात) यत् पदं तदुपपदं ज्ञेयम् । यतः शब्दार्थतोऽपि पित्रनुचरः पुत्र एव भवति । अत एव पितृपदस्य (लग्नारूढस्य) मुख्यत्वात् पुत्रभावपदस्य गौणत्वमपि सिद्धयति ।

भा०—पञ्चम भाव का पूर्वरीति से जो पद हो वह 'उपपद' कहलाता है । इसे ही गौणपद भी कहते हैं । क्योंकि-पितृपद (तनुभाव का पद) पूर्व मुख्यतया कहा गया है ।

प्राचीनैस्तु—"पिता (लग्नं) अनुचरो द्वितीयो यस्ये" ति बहुव्रीहिसमासेन द्वादशभावो गृहीतः । तथा—"पितुः (लग्नस्य) अनुचर" इति षष्ठीतत्पुरुषसमासेन द्वितीयभावो गृहीतः । तस्माद्द्वादशाद् द्वितीयाद्वा यत्पदं तदुपपदसंज्ञं स्यात् । अत एव—विषमलग्ने क्रमगणनया पित्रनुचरो द्वादशभावः, समे लग्ने चोत्क्रमगणनया द्वितीय—भावः पित्रनुचरो भवति । तस्मात् "यावदीशाश्रयं पदमृक्षाणा" मित्युक्त्या यत् पदं तदेवोपपदमित्युक्तं तदसङ्गतमिव । "सर्वत्र सवर्णा भावा राशयश्चे" ति पूर्वप्रतिज्ञाविरुद्धत्वात् । अतः पित्रनुचरोऽत्र सुतभाव एव ॥

अर्थात्—लग्न के अनुचर पश्चात् (पीछे) रहने वाला यथा—समलग्न में लग्न से द्वितीय राशि, विषम लग्न में लग्न से द्वादश राशि का पद उपपद कहलाता है । इस प्रकार बहुत से प्राचीन टीकाकारों ने व्याख्या की है । परञ्च वह असङ्गत है । क्योंकि—महर्षि की प्रतिज्ञा है कि सर्वत्र-वर्ण से जो भाव बने वही ग्रहण करना, इस लिये यहाँ वर्णों से और शब्दार्थ से भी पित्रनुचर से पञ्चम भाव ही सिद्ध होता है । वस्तुतः उत्तराधिकारी होने के कारण पुत्र का पद ही उपपद समुचित है ॥

उदाहरण—पूर्वलिखित जन्म लग्न तुला से पञ्चम कुम्भ का पद (धनु) उपपद हुआ ।

उपपद कुण्डली—

९ शु.
उपपद.
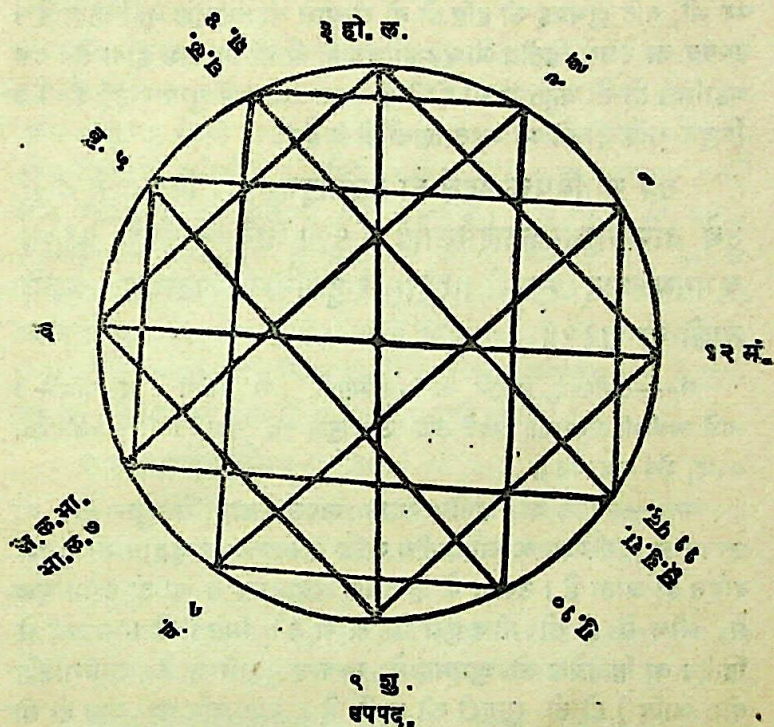
अथ तस्मात् [उपपदात्] फलान्याह—

तत्र पापस्य पापयोगे प्रव्रज्या दारनाशो वा ॥ २ ॥ नात्र रविः पापः ॥ ३ ॥ शुभदृग्योगान्न ॥ ४ ॥ नीचे दारनाशः ॥ ५ ॥ उच्चे बहुदारः ॥ ६ ॥ युग्मे च ॥ ७ ॥

सं०—तत्र तस्मिन्नुपपदे, वा तत्रोपपदाद् द्वितीये शेषं स्पष्टम्।

भा०—उपपद अथवा उपपद से द्वितीय पापग्रह की राशि हो वा पापग्रह से युक्त हो तो संन्यास ग्रहण करे अथवा स्त्री का नाश होता है।

इस प्रकरण में रवि पापग्रह नहीं है। उपपद वा द्वितीय में पापग्रह रहने पर भी, यदि शुभग्रह की दृष्टि हो तो संन्यास वा स्त्रीनाश नहीं होता है। उपपद वा उससे द्वितीय नीच ग्रहाश्रित हो तो स्त्री का नाश होता है। उच्च ग्रहाश्रित हो तो बहुत स्त्रियाँ होती हैं। उक्त स्थान में युग्म (१२ से=२) मिथुन राशि हो तो भी बहुत स्त्रियाँ होती हैं।

तत्र स्वामियुक्ते स्वर्क्षे वा तद्धेतावुत्तरायुषि निर्दारः ॥ ८ ॥ उच्चे तस्मिन्नुत्तमकुलाद्दारलाभः ॥ ९ ॥ नीचे विपर्ययः ॥१०॥ शुभसम्बन्धात् सुन्दरी ॥११॥ राहुशनिभ्यामपवादात् त्यागो नाशो वा ॥१२॥

सं०—तत्रोपपदे द्वितीये वा स्वामियुक्ते, वा तद्धेतौ (तत्स्वामिनि) स्वर्क्षे स्वकीयद्वितीयराशौ स्थिते सति उत्तरायुषि वृद्धे वयसि निर्दारः पत्नीरहितो भवति, शेषं स्पष्टार्थम् ॥

भा०—उपपद वा द्वितीय स्थान अपने स्वामी से युक्त हो, या उपपद से द्वितीयेश, अपनी द्वितीय राशि में हो तो वह वृद्धावस्था में स्त्री रहित हो जाता है। उपपद से द्वितीयेश अपने उच्च में हो तो उत्तम कुल से, नीच में हो तो नीच कुल से उत्पन्न स्त्री मिलती है। उपपद से द्वितीय वा द्वितीयेश को शुभग्रह से सम्बन्ध (शुभग्रह के षड्वर्ग दृष्टि योग आदि) हो तो सुन्दरी स्त्री होती है। राहु शनि का योग हो तो लोकापवाद से स्त्री का त्याग अथवा नाश होता है।

शुक्रकेतुभ्यां रक्तप्रदरः ॥१३॥ अस्थिस्रावो बुधकेतुभ्याम् ॥१४॥ शनिरविराहुभिरस्थिज्वरः ॥१५॥ बुधशुक्राभ्यां स्थौल्यम् ॥१६॥ बुधक्षेत्रे मन्दाराभ्यां नासिकारोगः ॥१७॥ कुजक्षेत्रे च ॥१८॥ गुरुशनिभ्यां कर्णरोगो वा नरहका च ॥१९॥ गुरुराहुभ्यां दन्तरोगः ॥२०॥ शनिराहुभ्यां कन्यातुलयोः पङ्गुर्वातरोगो वा ॥२१॥ शुभदृग्योगान्न ॥२२॥

सं०—उपपदे तद्द्वितीये वा शुक्रकेतुभ्यां स्त्रियां रक्तप्रदरनामको रोगो भवत्येवं सर्वं स्फुटार्थमेव ॥

भा०—उपपद या उससे द्वितीय में शुक्र केतु हो तो उस जातक की स्त्री को रक्त प्रदर होता है। बुधकेतु हो तो अस्थिस्राव रोग होता है। शनि रवि राहु हो तो अस्थिज्वर होता है। बुधशुक्र के सम्बन्ध से स्थूलता (मोटाई) होती है। यदि उक्त स्थान में मिथुन, कन्या हो उसमें शनि मङ्गल हो तो नासिका रोग होता है। मेष वृश्चिक भी हो तो नासिका रोग होता है। बृहस्पति शनि हो तो कर्णरोग और नरहका (नहरुवा) रोग होता है। गुरु राहु हो तो दन्तरोग होता है। उक्त स्थान में कुम्भ वा मीन हो तथा उसमें शनि राहु रहे तो उसकी स्त्री पंगु (लङ्गड़ी) अथवा वात रोगवाली हो। उपरोक्त पापकृत् योग में शुभग्रह की दृष्टि अथवा योग हो तो उक्तरोग नहीं होता है।

सप्तमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥२३॥

सं०—उपपदात् सप्तमांशग्रहेभ्यः (सप्तमो भावस्तस्य नवांशः, तदधिपग्रहश्च तेभ्यः) एवमुपरोक्तवत् फलानि ज्ञेयानि। "कटपये"त्यादिनापि सप्तशब्देन (७२, शे०=७) सप्तमभावो भवति ॥

भा०—उपपद (सप्त ७२ शेष ७) सप्तम भाव के नवांश और इन दोनों के स्वामी पर से भी उक्त प्रकार से फल विचार करना।

बुधशनिशुक्रेष्वनपत्यः ॥२४॥ पुत्रेषु रविराहुगुरुभिर्बहुपुत्रः ॥२५॥ चन्द्रेणैकपुत्रः ॥२६॥ मिश्रे विलम्बात पुत्रः ॥२७॥ कुजशनिभ्यां दत्तपुत्रः ॥२८॥ ओजे बहुपुत्रः ॥२९॥ युग्मेऽल्पप्रजः ॥३०॥

सं०— उपपदात्, सप्तमांशग्रहेभ्यश्च पुत्रेषु (नवमेषु) बुधशनिशुक्रेषु स्थितेषु, अनपत्यः सन्तानरहितो भवति। अन्यत् स्पष्टार्थम् ॥

भा०—उपपद से (तथा उपपद से सप्तमांश-ग्रह से) नवम भाव में बुध शनि शुक्र हों तो सन्तानहीन होता है। नवम में यदि रवि राहु

बृहस्पति हों तो बहुत पुत्र होते हैं। चन्द्रमा हो तो एक पुत्र होता है। नवमभाव में अपत्यकारक तथा अपत्यबाधक दोनों ग्रह मिले हों तो विलम्ब से पुत्र होता है। उक्त नवम स्थान में मङ्गल शनि हों तो दत्तक पुत्र होता है, नवम में विषम राशि हो तो बहुत पुत्र, समराशि हों तो अल्प पुत्र होते हैं।

गृहक्रमात् कुक्षितदीशपञ्चमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥३१॥ भ्रातृभ्यां शनिराहुभ्यां भ्रातृनाशः ॥३२॥ शुक्रेण व्यवहितगर्भनाशः ॥३३॥ पितृभावे शुक्रदृष्टेऽपि ॥३४॥ कुजगुरुचन्द्रबुधैर्बहुभ्रातरः ॥३५॥ शन्याराभ्यां दृष्टे यथास्वं भ्रातृनाशः ॥३६॥ शनिना स्वमात्रशेषश्च ॥३७॥ केतौ भगिनीबाहुल्यम् ॥३८॥

सं०—यथा पूर्वं उपपदात् तत्सप्तमांशग्रहेभ्यो 'नवमेषु' विचारः कृतः, एवं गृहक्रमात् राशिक्रमतः कुक्षितदीशपञ्चमांशग्रहेभ्यश्च [कुक्षि (६१/१२, = १) जन्मलग्नम्, तदीशो जन्मलग्नेशः, ततः पञ्चमो (पञ्चमः = ५६१/१२, = ९) नवमो [भावस्तन्नवांशग्रहेभ्यश्च] विचारः कार्यः। शेषं स्पष्टम् ॥

"सर्वत्र" सवर्णा भावा राशयश्चेति" पञ्चमशब्देनात्र नवमभाव एव ग्राह्यः कैश्चिट्टीकाकारैः पञ्चमशब्देनात्र पञ्चम एव गृहीतस्तैरेव 'पञ्चमे प्राक्प्रत्ययकत्व'-मित्यत्र 'पञ्चम' शब्देन नवमो गृहीत इति विरोधापत्तिः। तथा 'कुक्षि, शब्दादुपपदं गृहीतं तदप्यसङ्गतं, प्रकरणे पुनस्तदुपादानस्य वैयर्थ्यापत्तेरिति भृशं चिन्त्य विपश्चिद्भिः ॥३१॥

भा०—(जिस प्रकार उपपद–तथा उससे सप्तम और उसके नवांश और उनके स्वामी के नवम भाव से विचार किया गया है) उसी प्रकार जन्मलग्न क्रम से लग्न, लग्नेश और लग्न से नवम भाव और नवमांश तथा नवांशपति से भी विचार करना।

'पञ्चम' शब्द से सर्वत्र नवम भाव का ग्रहण करना चाहिये। यहाँ पुत्र भाव का विचार के प्रकरण देखकर कितने टीकाकार पञ्चम से पञ्चम भाव ही ग्रहण किये हैं। किन्तु "सर्वत्र सवर्णा भावाः" इस

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा से विरोध होने के कारण ऐसा अर्थ करना अयुक्त प्रतीत होता है। और नवमभाव से भी पुत्र सम्बन्धी विचार स्पष्ट हो सकता है, क्योंकि नवमभाव पुत्रभाव से पञ्चम होता है इसलिये पुत्र के सन्तान (पौत्र आदि) का शुभाशुभ फल नवमभाव के अनुसार ही होता है। अर्थात् जिसको पौत्र होने का योग होगा उसको पुत्र अवश्य ही होगा क्योंकि बिना पुत्र के पौत्र हो ही नहीं सकता इसलिए नवम भाव के शुभ होने से पुत्र होना स्वयं सिद्ध है।

तथा उपरोक्त स्थानों से भ्रातृस्थान (११।३) में शनि और राहु हों तो भाई का नाश होता। शुक्र हों तो अपने व्यवहित (अर्थात् पूर्व और पश्चात् के) गर्भ का नाश होता है। लग्न से अष्टम में शुक्र की दृष्टि रहने से भी व्यवहित गर्भ का नाश समझना। मङ्गल, बृहस्पति, चन्द्र, बुध (११।३) में हों तो बहुत भाई वाला होता है। शनि और मङ्गल की दृष्टि हो तो यथाक्रम भाई का (अर्थात् ११ में बड़े भाई और ३ में छोटे भाई का) नाश होता है। केवल शनि की दृष्टि हो तो केवल अपने बचता है (अर्थात् बड़े छोटे सब सहोदरों का नाश होता है)। तथा उक्त स्थानों से (३।११) में केतु हो तो बहुत बहिन वाला होता है।

लाभेशाद् भाग्यमे राहौ दंष्ट्रावान् ॥३९॥ केतौ स्तब्ध-वाक् ॥४०॥ मन्दे कुरूपः ॥४१॥

स०—लाभेशात् (उपपदात् सप्तमेशात्) भाग्यमे (द्वितीये) शेषं स्पष्टम्।

भा०—उपपद से द्वितीय भाव में राहु हो तो अधिक वा बड़े बड़े दाँत वाला होता है। केतु हो तो बात बोलने में असमर्थ होता है (अर्थात् स्पष्ट वाक्य नहीं बोल सकता है)। शनि हो तो कुरूप होता है।

गौरादिवर्णज्ञानं देवताभक्तिं चाह—

स्वांशवशाद् गौरनीलपीतादिवर्णाः ॥४२॥

अमात्यानुचराद्देवताभक्तिः ॥४३॥

सं०—आत्मकारकनवांशवशात् (नवांश-राशितत्पतिवर्णसदृशाः "रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुः" इत्यादिबृहज्जातकोक्ताः) गौरादिवर्णा ज्ञेया शेषं स्पष्टम् ।

भा०—आत्मकारक के नवांशानुसार "रक्तः श्वेतः शुकतनुनिभः" इत्यादि राशिवर्णानुसार—"रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुः" इत्यादि अनुसार नवांशपति के वर्ण सदृश गौर, कृष्ण, पीत आदि जातक का वर्ण समझना । अमात्यानुचर (भ्रातृकारक) से देवता सम्बन्धिनी भक्ति का विचार करना, अर्थात् भ्रातृकारक के शुभत्व तथा उच्चादि सत्पदस्थ होने से शुभ देवता में सात्त्विकी भक्ति, और भ्रातृकारक के पापत्व तथा नीचादि असत्स्थानस्थ होने से क्रूरदेवता में तामसी भक्ति इत्यादि समझना ।

अथ परजातादिफलमाह—

स्वांशे केवलपापसम्बन्धे परजातः ॥ ४४ ॥ नात्र पापात् ॥ ४५ ॥ शनिराहुभ्यां प्रसिद्धिः ॥ ४६ ॥ गोपनमन्येभ्यः ॥ ४७ ॥ शुभवर्गेऽपवादमात्रम् ॥४८॥ द्विग्रहे कुलमुख्यः ॥४९॥

सं०—आत्मकारके केवलपापग्रहसम्बन्धे परजातः । अत्र पापात् (आत्मकारकस्य पापत्वात्) न (परजातो नेत्यर्थः) । शेष स्पष्टम् ।

भा०—आत्मकारक के नवांश में यदि केवल पाप ग्रह के सम्बन्ध हो तो वह जातक परजात (दूसरे से उत्पन्न) होता है । किन्तु आत्मकारक के पाप होने से परजात नहीं होता (अर्थात् कारक भिन्न पाप ग्रहों के सम्बन्ध से ही उक्त फल समझना) । कारकांश में शनि राहु हो तो परजात होना प्रसिद्ध हो जाता है । दूसरे पाप ग्रहों से गुप्त रहता है । शुभ ग्रह के वर्ग कारकांश में तो अपवाद मात्र होता है, वास्तव में परजात नहीं होता है । आत्मकारकांश में दो ग्रह हों तो वह जातक अपने कुल में मुखिया (श्रेष्ठ) होता है ॥४४-४९॥

इति ज्यौतिषाचार्यश्रीसीतारामशर्ममैथिलकृते तत्त्वादर्शनाम्नि जैमिनीसूत्र-तिलके प्रथमाध्याये चतुर्थः पादः ।

—:⁂:—

अथायुर्दायाध्यायः ॥ २ ॥

तत्र प्रथममायुर्निरूपणमाह—

आयुः पितृदिनेशाभ्याम् ॥ १ ॥ प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम् ॥ २ ॥ प्रथमद्वितीययोरन्तयोर्वा मध्यम् ॥ ३ ॥ मध्ययोराद्यन्तयोर्वा हीनम् ॥ ४ ॥ एवं मन्दचन्द्राभ्याम् ॥ ५ ॥ पितृकालतश्च ॥ ६ ॥ सम्वादात् प्रामाण्यम् ॥ ७ ॥

सं०—पितृदिनेशाभ्यां (लग्नेशाष्टमेशाभ्यां) आयुर्विचार्यम् ॥ १ ॥ यथा—प्रथमयोः (चरराशिस्थयोः), उत्तरयोः (स्थिरद्विस्वभावस्थयोर्वा लग्नेशाष्टमेशयोः) दीर्घम् । प्रथमद्वितीययोः (चरस्थिरराशिस्थयोः) अन्तयोः (द्विस्वभावस्थयोर्वा) मध्यम् ॥ २ ॥ मध्ययोः (स्थिरराशिस्थयोः), आद्यन्तयोः (चरद्विस्वभावस्थयोर्वा) हीनम् (अल्पायुः) ज्ञेयम् ॥३॥ अथ द्वितीयप्रकारं कथयति—एवं (यथा लग्नेशाष्टमेशाभ्यामायुर्विचारः कृतस्तथा) मन्दचन्द्राभ्यां (शनिचन्द्राभ्यामपि) आयुर्विचार्यम् । पुनस्तृतीयप्रकारं कथयति–पितृकालतः (लग्न–होरालग्नाभ्यां) च एवमेवायुर्विचार्यम् । सम्वादात् (प्रकारत्रयेण प्रकारद्वयेन वायुर्दायसमत्वं सम्वादस्तस्मात्) प्रामाण्यम्, प्रकारत्रयेण प्रकारद्वयेन वा यदायुः समागच्छेत् तदेव ग्राह्यमित्यर्थः ।

भा०—पितृ ($\frac{६१}{५२}$, शे० १ = लग्न), दिन (८) । लग्नेश और अष्टमेश इन दोनों से आयुर्दाय का विचार करना चाहिये ।। जैसे—लग्नेश और अष्टमेश दोनों चरराशि में हो, अथवा एक स्थिर दूसरा द्विस्वभाव में हो तो दीर्घायु समझना ।। यदि एक चर राशि में दूसरा स्थिर में, वा दोनों द्विस्वभाव में ही हो तो मध्यमायु समझना ।। यदि दोनों स्थिरराशि में हो, वा एक चर में दूसरा द्विस्वभाव में हो तो हीन (अल्पायु) समझना । यह प्रथम प्रकार हुआ ।

इसी प्रकार शनि और चन्द्रमा पर से विचार करना तथा लग्न और होरालग्न से भी इसी प्रकार आयुर्दाय विचार करना । यदि तीनों

प्रकार से एक तरह की आयु आवे अथवा दो प्रकार से जो आवे वही ग्रहण करना चाहिये ।

विशेष—आशङ्का "एवं मन्दचन्द्राभ्याम्" इस सूत्र में 'मन्द' शब्द का अर्थ "शनि" कृष्णानन्द सरस्वती आदि बहुत टीकाकारों ने किया है। किन्तु प्रत्येक जातक ग्रन्थों में लग्न और चन्द्रमा से ही ग्रहों की स्थिति वश से फलादेश कहा गया है, इसलिये यहाँ भी मन्द शब्द से =(८५/१२ शेष = १ = लग्न) सर्वदा लग्न का ही ग्रहण करना उचित प्रतीत होता है। तनु का अधिपति लग्नेश, मन का अधिपति चन्द्रमा, तथा आयुर्दाय (अष्टमभाव) का स्वामी अष्टमेश है, इसलिये इन्हीं तीनों की स्थिति वश से आयु की हानि वृद्धि होती है। इसलिये लग्नेश, अष्टमेश से, तथा लग्न, चन्द्रमा से और लग्न होरालग्न से ही आयुर्दाय निर्णय समुचित है।

इसका उत्तर यह है कि—शनि भी आयुर्दाय का अधिकारी है कारण आयुर्दाय यम के हाथ में रहता है जो सत्यवान् सावित्री आदि की कथा से स्पष्ट है। शनि यम है इसलिये शनि आयुर्दाय का मुख्य अधिकारी हो सकता है।

अथवा योगायुर्दाय से स्पष्ट है कि प्रत्येक ग्रह आयुर्दाय की हानिवृद्धि में हेतु होते हैं उनमें सबसे आगे चलने वाले चन्द्रमा और सबसे पीछे चलनेवाले शनि हैं। शेष ग्रह इन दोनों के मध्य में हैं इसलिये इन दो ग्रहों की स्थिति से ही आयु की स्पष्टता हो सकती है। तथा इस ग्रन्थ में भी जहाँ तहाँ मन्द शब्द से शनि का ग्रहण होता है इसलिये यहाँ भी मन्द शब्द से शनि ही ग्रहण करना चाहिये।

स्पष्टार्थं आयुर्दाय विचार बोधक चक्र—

लग्नेश अष्टमेश, शनि चन्द्र, लग्न होरालग्न-इनकी स्थिति से					
दीर्घ	दीर्घ	मध्य	मध्य	अल्प	अल्प
चर चर	स्थिर द्विस्व	चर स्थिर	द्विस्व द्विस्व	चर द्विस्व	स्थिर स्थिर

अथ विसंवादे (प्रकारत्रयेण भिन्ने भिन्ने आयुषि समागते) सति विशेष-सूत्रमाह—

विसंवादे पितृकालतः ॥ ८ ॥

सं०—त्रिसम्वादे प्रकारत्रयेण भिन्ने भिन्ने आयुषि समागते सति पितृकालतः लग्नहोरालग्नाभ्यां यदायुः समागच्छेत् तदेव ग्राह्यम् ।

भा०—यदि उपरोक्त तीनों प्रकार से आयुर्दाय के विचार में भिन्न भिन्न (तीनों तरह की) आयु आवे तो उस हालत में लग्न और होरा-लग्न पर से जो निश्चित हो वही ग्रहण करना चाहिये ।

अथायुर्विसम्वादे पुनर्विशेषसूत्रमाह—

पितृलाभगे चन्द्रे चन्द्रमन्दाभ्याम् ॥ ९ ॥

स०—'विसम्वादे' पितृलाभगे (लग्नगे सप्तमगे वा) चन्द्रे सति चन्द्रमन्दाभ्यां (चन्द्रशनिभ्यां) यदायुः समागच्छेत् तदेव ग्राह्यम् । लग्नसप्तमाभ्यामन्यत्र स्थिते चन्द्रे लग्नहोरालग्नाभ्यां सिद्धमायुर्ग्राह्यं, लग्नसप्तमगे चन्द्रे शनिचन्द्राभ्यां समागतमायुर्ग्राह्यमित्यर्थः ।

भा०—विसम्वाद होने पर भी यदि लग्न या सप्तमभाव में चन्द्रमा हो तो उस हालत में शनि, और चन्द्रमा पर से जो आयुर्दाय सिद्ध हो वही लेना चाहिये । अन्यथा (यदि लग्न सप्तम में चन्द्र न हो तो) अष्टम सूत्रानुसार लग्न होरालग्न से सिद्ध आयु ग्रहण करना ।

विशेष—"शनौ योगहेतौ कक्ष्याह्रासः १०" इस अगले सूत्र से शनि के योग हेतु होने से कुछ टीकाकार मन्द शब्दसे 'शनैश्चर' और लग्न दोनों ग्रहण करते हैं । तथा पञ्चमसूत्र के अपवाद में ही ९ नवम सूत्र को विशेष मानकर ऐसा अर्थ करते हैं कि—

"एवं मन्दचन्द्राभ्याम्—इसी प्रकार शनि और चन्द्रमा पर से भी आयुर्दाय विचार करना ।" फिर उसके विशेष में—"पितृलाभगे चन्द्रे चन्द्रमन्दाभ्याम् ९. लग्न सप्तम में चन्द्रमा हो तो मन्दशब्द से लग्न ग्रहण करना अर्थात् उस हालत में लग्न और चन्द्रमा पर से आयुर्दाय का विचार करना अन्यथा मन्द शब्द से शनि का ग्रहण करना" ।

परन्तु ऐसा अर्थ आचार्य का अभिप्रेत रहता तो पञ्चम सूत्र (एवं मन्द-चन्द्राभ्याम् ५) के अनन्तर ही विशेष (षष्ठ) सूत्र में ही "पितृलाभगे चन्द्रे

चन्द्रमन्दाभ्याम्" इसको कहते। अथवा स्फुटशब्द में एक स्थान में 'शनिचन्द्राभ्याम्" ऐसा ही कह देते। इसलिये अष्टमसूत्र के लिए ही नवम सूत्र विशेष वचन हैं। अथवा मेरा इसमें आग्रह नहीं। दोनों प्रकार के अर्थों में जिन्हें जो रुचे अथवा तीसरा ही अर्थ कोई समुचित हो तो ग्रहण करें। क्योंकि शब्द कामधेनु है। किन्तु इतना कह देना उचित है कि यदि मन्द शब्द से शनैश्चर ग्रहण करें तो दोनों जगह शनैश्चर ही या लग्न ग्रहण करें तो दोनों सूत्र में लग्न ही ग्रहण करके अष्टम सूत्र के अपवाद ही में नवम सूत्र का समावेश करें॥ इति॥

तथा पराशरकारिका—

"आदौ लग्नाष्टमेशाभ्यां योगमेकं विचिन्तयेत्।
जन्म-होराविलग्नाभ्यां द्वितीयं परिचिन्तयेत्॥
तृतीयं शनिचन्द्रभ्यां चिन्तयेत्तु द्विजोत्तम!।
योगत्रयेण योगाभ्यां सिद्धं यद्ग्राह्यमेव तत्॥
योगत्रयविसम्वादे लग्नहोराविलग्नतः।
लग्ने वा सप्तमे चन्द्रे चिन्तयेन्मन्दचन्द्रतः॥ स्पष्टार्थ—

उपरोक्त दीर्घायु आदि योग समझने के लिये सरल प्रकार—

"चरे चरस्थिरद्वन्द्वाः, स्थिरे द्वन्द्वचरस्थिराः।
द्वन्द्वे स्थिरद्वन्द्वचरा दीर्घमध्याल्पकाः क्रमात्॥"

अर्थ—उपरोक्त आयुर्दाय के दो दो योगकारकों में यदि एक चर में हो तो दूसरे के चर में होने पर दीर्घायु, स्थिर में मध्यमायु, तथा द्विस्वभाव में अल्पायु। तथा यदि एक स्थिर में हो तो दूसरे को द्विस्वभाव में होने पर दीर्घायु, चर में होने पर मध्यमायु, स्थिर में हो तो अल्पायु। एवं एक द्विस्वभाव में हो तो दूसरे के स्थिर में होने पर दीर्घायु, द्विस्वभाव में मध्यमायु, चर में होने से अल्पायु समझना।

उपरोक्त तीनों योग के अनुसार दीर्घ, मध्य, अल्प आयु के भी तीन तीन भेद होते हैं।

दीर्घायुः—दीर्घे योगत्रयेणैवं नखचन्द्र (१२०) समाब्दकाः।
योगद्वयेन वसुवाग्याः (१०८) योगैकेन रसाङ्कका: (९६)॥

मध्यायुः—मध्ये योगत्रयेणैवं खाष्टतुल्याब्दकाः (८०) स्मृताः ।
द्व्यगाः (७२) योगद्वयेनात्र योगैकेनाङ्गिषण्मिताः (६४) ॥
अल्पायुः—अल्पे योगत्रयेणात्र द्वात्रिंशन्मित-(३२)-वत्सराः ।
योगद्वयेन षट्त्रिंशत् (३६) योगैकेन च खाब्धयः (४०) ॥

अर्थ—तीनों प्रकार से दीर्घायु में १२० वर्ष, दो प्रकार से दीर्घायु में १०८ वर्ष, तथा एक प्रकार से दीर्घायु में ९६ वर्ष होते हैं।

तथा तीनों प्रकार से मध्यायु में ८० वर्ष, दो प्रकार से मध्यायु में ७२ और एक प्रकार से मध्यायु में ६४ वर्ष होते हैं।

एवं तीनों प्रकार से अल्पायु में ३२, दो प्रकार से अल्पायु योग में ३६, एक प्रकार से अल्पायु सिद्ध हो तो ४० वर्ष होते हैं।

स्पष्टार्थं चक्रम्—

दीर्घायु	एकयोगे ९६	योगद्वये १०८	योगत्रये १२०
मध्यायु	एकयोगे ६४	योगद्वये ७२	योगत्रये ८०
अल्पायु	योगत्रये ३२	योगद्वये ३६	एकयोगे ४०
	प्रथम खण्ड ३२	द्वितीय खण्ड ३६	तृतीय खण्ड ४०

अथ स्पष्टायु साधन करने का प्रकार—

"पूर्णं राश्यादिगे चान्ते हानि-र्मध्येऽनु पाततः ।
योगकारकखेटांशयोगस्तत्संख्यया　　हृतः ॥
लब्धांशास्तु　यथा प्राप्तखण्डघ्ना स्त्रिंशतोद्धृताः ।
लब्धवर्षादिभिर्हीनं　प्राप्तायुः　प्रस्फुटं　भवेत् ॥"

उपरोक्त आयुर्दाय के विचार में लग्नेश, अष्टमेश आदि योगकारक ग्रह यदि राश्यादि में हो तो ३२ आदि उपरोक्त खण्ड पूर्ण होते हैं, तथा राशि के अन्त में हो तो खण्ड तुल्य आयु का ह्रास हो जाता है। अतः राशि के मध्य में अंश द्वारा अनुपात से स्पष्टता होती है। जैसे—

योगकारक जितने हों उनके अंशों के योग में योगकारक की संख्या से भाग देकर जो अंशादि लब्ध हो उसे यथाप्राप्त खण्ड से गुनाकर गुणनफल में ३० के भाग देकर लब्ध वर्षादि को यथाप्राप्त आयुर्दाय में घटाने से स्पष्ट आयु होती है।

उदाहरण—प्रथमाध्याय-में जन्मलग्न कुण्डली और स्पष्ट ग्रह देखिये—

(१) प्रकार—लग्नेश शुक्र, और अष्टमेश शुक्र ही है वह द्विस्वभावराशि में है इसलिये तृतीय सूत्रानुसार मध्यमायु योग हुआ—

(२) प्रकार—चन्द्रमा चर में, और शनि स्थिर में है, इसलिये तृतीय सूत्रानुसार मध्यमायु योग हुआ।

(३) प्रकार—लग्न चर में, और होरालग्न द्विस्वभाव में है इसलिये ४र्थ सूत्रानुसार अल्पायु योग हुआ।

यहाँ एक प्रकार से अल्पायु और दो प्रकार से मध्यमायु योग होने के कारण मध्यमायु योग ही सिद्ध हुआ।

अतः योगकारक—लग्नेश शुक्र ८।२५।४३।१८
अष्टमेश शुक्र ८।२५।४३।१८
चन्द्रमा — ७।१४।१५
शनि — ३।१८।८।१६
} इनके राशियों को छोड़ अंशादि के-

योग करने से················।७०।३९। ७ इस में योगकारक संख्या ४ से भाग देकर लब्ध अंशादि १७।३९।४६।४५ इस को दो प्रकार मध्यायु योग होने के कारण द्वितीय खण्ड ३६ से गुना करने से ६१२°।१४०४।१६५६″।१६२०‴=६३५°।५२′।३″।०* इसमें ३० से भाग

*अथवा—प्राप्तखण्डगुणा अंशा द्वादशघ्ना दिनादिकम्।
तेन हीनं सदा कार्यं प्राप्तायुः प्रस्फुटं तदा॥ इति॥

प्राप्त खण्ड से गुने हुये अंशादि को १२ से गुना करने से दिनादि फल होता है। यथा खण्डे से गुनित अंशादि ६३५।५३।३ को १२ से गुना करने से दिनादि ७६२०।६२४।३६ दिन में ३० से भाग देकर मासादि २५४।१०।२४।३६ मास में १२ से भाग देकर वर्षादि २१।२।१०।२४।३६ फल तुल्य हो हुआ।

देकर मास और मास में १२ के भाग देकर लब्ध वर्षादि २१।२।१०।२४।३६ इसको दो योग सम्बन्धी मध्यमायु ७२ में घटाने से ५०।९।१९।३५।२४ यह वर्षादि स्पष्टायु हुई।

द्वितीय उदाहरण—

प्रथमलग्न—३।१०।१५।५

होरालग्न—३।२४।१५।२०

लग्नेश चन्द्र—४।५।२०।२५

अष्टमेश-शनि—५।४।१३।१५

सूर्य—१।१२।१५।२०

कल्पित जन्मलग्न कुण्डली—
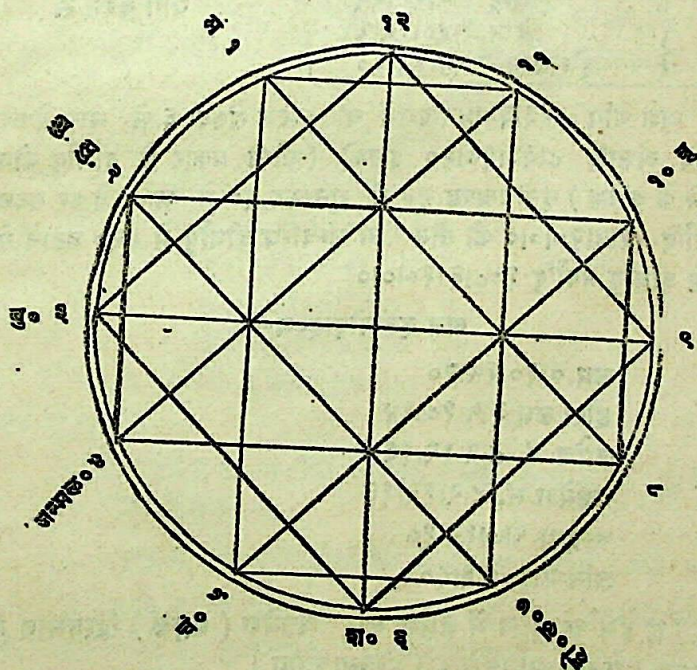
(१) इस उदाहरण में लग्नेश चन्द्र स्थिर में और अष्टमेश (शनि) द्विस्वभाव में है अतः द्वितीय सूत्रानुसार दीर्घायु योग।

(२) तथा चन्द्रमा और शनि स्थिर द्विस्वभाव में है. अतः द्वितीय सूत्रानुसार दीर्घायु योग।

(३) तथा लग्नचर में है और होरा लग्न भी चर में है अतः द्वितीय सूत्रानुसार दीर्घायु योग हुआ। यहाँ तीनों प्रकार से दीर्घायु योग निर्विवाद सिद्ध हुआ। अतः योगकारक ग्रहादिकों के

१	लग्नेश चन्द्र ४.५.२०।२५	राशि छोड़कर अंशों के योग करने से
	अष्टमेश शनि ५।४।१३।१५	
२	शनि ५।४।१३।१५	
	चन्द्र ४।५।२०।२५	
३	लग्न ३।१०।१५।५	
	होरालग्न ३।२४।१२।२०	

अंश योग = ५३।३७।४५ इसमें योगकारक संख्या ६ से भाग देकर लब्ध अंशादि ८।३६।१७।३० इसको (तीनों प्रकार से दीर्घायु योग होने के कारण) तृतीयखण्ड ४० से गुनाकर ३० से भाग देकर लब्ध वर्षादि ११।५।२०।०।० को तीन योग सम्बन्धि दीर्घायु में १२० घटाने से स्पष्ट दीर्घायु वर्षादि १०८।६।१०।०।०

अथ तृतीयोदाहरण—

लग्न ०।१०।१५।२०
होरा लग्न ३।५।१०।१४
लग्नेश मं. ८।२।१२।१६
अष्टमेश मं. ८।२।१२।१६
चन्द्रमा ९।७।१२।१०
शनि २।१०।१३।३०

(१) इस उदाहरण में लग्नेश और अष्टमेश (मङ्गल) द्विस्वभाव में है, अतः (तृतीय सूत्रानुसार) मध्यमायुयोग।

(२) तथा चन्द्रमा चर में और शनि द्विस्वभाव में हैं अतः चतुर्थ सूत्रानुसार अल्पायु योग ।

(३) तथा लग्न और होरालग्न दोनों चर में है अतः (द्वितीय सूत्रानुसार) दीर्घायु योग हुआ ।

यहाँ तीनों प्रकार से तीन प्रकार (भिन्न भिन्न) आयुर्दाय योग होने के कारण विसम्वाद में (८ सूत्रानुसार) लग्न और होरालग्न से सिद्ध दीर्घायु का ग्रहण करना उचित है ।

अतः योगकारक (लग्न और होरालग्न) के अंशों के योग १५।२५।३४ में योगकारक संख्या २ से भाग देकर अंशादि ७।४२।४७ को एक योग से दीर्घायु सिद्ध होने के कारण प्रथम खण्ड ३२ से गुनाकर फिर पूर्वोक्त "प्राप्तखण्डगुणा अंशाः" इत्यादि । श्लोकानुसार १२ से गुनाकर दिनादि २९६१।४८।४८ अतः वर्षादि ८।२।२१।४८।४८ इसको एक योग सम्बन्धी दीर्घायु ९६ में घटाने से ८७।९।८।११।१२। स्पष्टायु हुई ।

चतुर्थ उदाहरणः—

लग्नेश शुक्र = ७।१०।१४।२०
अष्टमेश शुक्र = ७।१०।१४।२०
च. = ०।५।१०।८
श. = ९।११।१६।६
लग्न = ६।१२।१५।२०
हो. ल = ७।२।८।१०

इस कुण्डली में

(१) लग्नेश शुक्र, अष्टमेश भी शुक्र—वह स्थिर में है इसलिये हीनायुयोग ।

(२) चन्द्रमा और शनि दोनों चर में है, अतः दीर्घायु योग ।

(३) लग्न चर में, होरा लग्न स्थिर में है अतः मध्यायु योग ।

यहाँ तीनों प्रकार से विसम्वाद (भिन्न भिन्न आयु) है । इ अतः अस
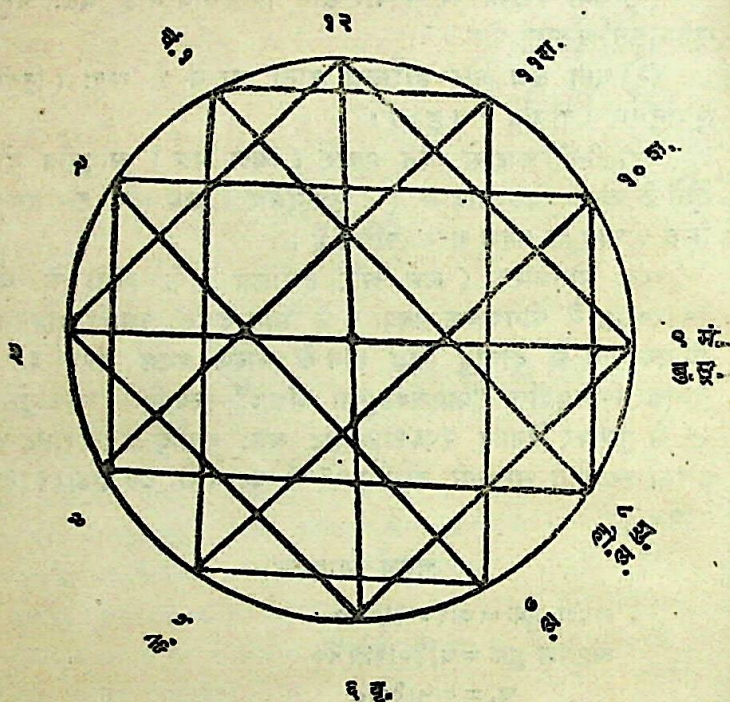
सूत्र से लग्न और होरालग्न से सिद्ध मध्यायु की प्राप्ति होती है। परन्तु लग्न से सप्तम में चन्द्रमा है इसलिये नवम सूत्र के अनुसार चन्द्र और शनि से सिद्ध दीर्घायु योग ही प्राप्त हुआ क्योंकि अष्टम सूत्र सामान्य है, नवम उसका विशेष है—"सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्" इति। गणित पूर्वोक्त रीति से स्पष्ट है।

जैसे चतुर्थ उदाहरण में शनि के योग हेतु होने से भी कक्ष्या ह्रास होकर मध्यायुयोग होना चाहिये। परन्तु अग्रिम (१२ सूत्र) के अनुसार अपनी राशि में शनि के होने के कारण कक्ष्या ह्रास नहीं होकर दीर्घायु योग सिद्ध रहा।

अतः शनि और चन्द्रमा के अंश योग १६।२६।१४ इसमें योगकारक संख्या २ से भाग देकर ८।१३।७ इस पर से पूर्वोक्त युक्ति से वर्षादि आयु ८७।२।२४।३।१२ हुई ॥

केशवादि कारिकाकारों ने मन्द शब्द से दोनों सूत्र में लग्न का ही ग्रहण किया है । यथा केशवाचार्य—

"लग्नेन्दुभ्यामेवमायुंषि विज्ञैर्विज्ञेयानि प्रोक्तरीत्या पुनश्च ।
तद्वद् होरालग्न जन्माङ्गकाभ्या-मायुषि स्युर्दीर्घमध्याल्पकानि॥
त्रिभिः प्रकारैरपि चैकरूपमायुः समायाति तदा न वादः ।
द्वाभ्यां विधाभ्यामपि यत् समानं तदेव मान्यं न तु चैककेन ॥
त्रयाणामपि पक्षाणां वैरूप्ये सति विद्वर ! ।
होराङ्गजन्मलग्नाभ्यां प्राप्तमायुः समाश्रयेत् ॥
शशाङ्के लग्नगे वापि पत्नीस्थानगतेऽपि वा ।
तदायुश्चन्द्रलग्नाभ्यां प्राप्तं स्वीकार्यमेव तत् ॥

स्पष्टार्थ ।

परञ्च पराशर की कारिका में 'मन्द' के स्थान में "शनि" लिया गया है, इसलिये हमने भी 'मन्द' शब्द का अर्थ शनि ही मानकर उदाहरण दिखलाया और शनि ग्रहण करके आयुर्दाय बनाने से ठीक मिला भी ।

अर्थ दोनों ही सकते हैं । प्रमाण भी दोनों पक्ष के मिलते हैं, परञ्च जिससे फल मिले वही उचित समझना । विवाद से मतलब नहीं, इति ।

अथ लग्नसप्तमगे चन्द्रे—मन्दचन्द्राभ्यामायुर्ग्राह्यमित्युक्तं तत्र विशेषमाह—

शनौ योगहेतौ कक्ष्याह्रासः ॥१०॥

सं०—शनौ योगहेतौ (योगकारके) सति कक्ष्याह्रासः (द्वात्रिंशत्-षट्त्रिंशच्चत्वारिंशद्वर्षमितायास्त्रिविधकक्ष्यायाः, अथवा दीर्घमध्याल्पायुस्स्वरूपायाः कक्षायाः ह्रासः) स्यात्, अर्थात् दीर्घमायुः प्राप्त चेन्मध्यम्, मध्यं चेदल्पम्, अल्पं चेत् ततोऽपि हीनमायुर्भवति ।

भा०—उपरोक्त त्रिविध आयुर्दायविचारों से यदि शनियोगकारक हो तो कक्ष्या का ह्रास होता है। अर्थात् दीर्घायु प्राप्ति में मध्यायु, मध्यायु में अल्पायु, अल्पायु में उससे भी हीनायु समझना।

कोई—कक्ष्या ह्रास प्रसङ्ग में ४०।३६।३२ इन खण्डों को कक्ष्या मानकर पूर्व प्रदर्शित युक्ति से ४० के स्थान में ३६, ३६ के स्थान में ३२ और ३२ के स्थान में शनि जिस राशि में हो उस राशि की दशा के वर्ष का आधा ह्रास होता है। वहाँ भी ३० अंश में दशा वर्ष प्रमाण तो शनि के भुक्तांश में क्या ? इस अनुपात से लब्ध वर्ष ३२ में घटा कर स्पष्ट मानते हैं। कक्ष्या वृद्धि पक्ष में इसी प्रकार वृद्धि भी समझना।

अत्रान्यमतं निरूपयति—

विपरीतमित्यन्ये ॥११॥

सं०—अन्ये आचार्याः विपरीतं (शनौ योगहेतौ कक्ष्यावृद्धिमेव) कथयन्ति (अनायुश्चेदल्पायुः, अल्पायुश्चेन्मध्यम्, मध्यं चेद् दीर्घम्, दीर्घं चेत् ततोऽप्यधिकमित्यर्थः)।

भा०—दूसरे आचार्यों के मत से शनि के योगकारक होने से विपरीत (कक्ष्या की वृद्धि) होती है। अर्थात् अल्पायु हो तो मध्यायु, मध्यायु हो तो दीर्घायु, दीर्घायु हो तो उससे भी अधिक दीर्घायु समझना।

कक्ष्या वृद्धि के विषय में भगवान् पराशर का वाक्य—

अनायुश्चेद् भवेदल्प-मल्पान्मध्यं प्रजायते।
मध्यमाज्जायते दीर्घं दीर्घायुश्चेत्ततोऽधिकम् ॥
"योगहेतौ शनावेवं कक्ष्यावृद्धेश्च लक्षणम्।
एतस्माद् वैपरीत्येन कक्ष्याह्रासोऽपि जायते ॥" इति स्पष्टार्थम्।

पुनः स्वमतेन कक्ष्याह्रासेऽपवादमाह—

न स्वर्क्षतुङ्गगे सौरे ॥१२॥ केवलपापदृग्योगिनि च ॥१३॥

सं०—सौरे शनैश्चरे स्वर्क्षगे स्वोच्चस्थे सति न (कक्ष्याह्रासो नेत्यर्थः) केवलपापदृग्युते च शनैश्चरे कक्ष्याह्रासो न स्यात्। अन्यथा योगहेतौ सति कक्ष्याह्रासः स्यादेवेति।

भा०—"शनि के योगहेतु (योगकारक) होने पर भी" यदि अपनी राशि या अपने उच्च में हो तो कक्ष्याह्रास नहीं होता है। तथा केवल पाप ग्रह से ही दृष्ट युत हो तब भी कक्ष्या का ह्रास नहीं होता है। अन्यथा कक्ष्याह्रास होता ही है।

जैसे चतुर्थ उदाहरण में शनि योग कारक है परन्तु अपनी राशि या उच्चराशि में नहीं है तथा शुभ ग्रह से युत है इस लिये कक्ष्याह्रास होना सिद्ध हुआ। अर्थात् दीर्घायु योग आय है तो वहाँ मध्यायु ही ग्रहण करके उपरोक्त युक्ति से गणित द्वारा स्पष्ट आयु बनाना।

अथ कक्ष्यावृद्धियोगं कथयति—

पितृलाभगे गुरौ केवलशुभदृग्योगिनि च कक्ष्यावृद्धिः ॥१४॥

सं०—पितृलाभगे लग्नसप्तमस्थे गुरौ, तथा केवलशुभदृग्योगिनि च गुरौ सति कक्ष्यावृद्धिः। अर्थादल्पायुर्योगे मध्यायुः, मध्यायुषि दीर्घायुः, दीर्घायुषि पूर्णायुः ततोऽप्यधिकं वा ज्ञेयम्।

भा०—यदि लग्न सप्तम में बृहस्पति हो, अथवा केवल शुभग्रह से युत दृष्ट बृहस्पति हो तो कक्ष्या की वृद्धि होती है। अर्थात् अल्पायु में मध्यायु, मध्यायु में दीर्घायु और दीर्घायु में पूर्णायु समझना चाहिये।

अब इस प्रकार आयुर्दाय निश्चय होने पर 'गणितसिद्ध आयुर्दाय के समाप्त होने पर मरण होता है, या उसके बीच में भी" इस विषय में द्वार और बाह्य राशि से मरणयोग कहते हैं। दशाश्रय राशि द्वार, तथा प्रथमदशाप्रद राशि से द्वार राशि की जितनी संख्या हो फिर द्वार राशि से उतनी संख्या गिनकर जो राशि हो वह बाह्य कहलाता है। इसी अध्याय के चतुर्थपाद में दूसरा और तीसरा सूत्र देखिये।

अथ मरणयोगं, तदपवादं तत्र विशेषं चाह—

मलिने द्वारबाह्ये नवांशे निधनं, द्वारद्वारेशयोश्च मालिन्ये ॥१५॥ शुभदृग्योगान्न ॥१६॥

सं०—"दशाश्रयो राशिर्द्वारसंज्ञः, तथा प्रथमदशाप्रदराशितो यावत्संख्यो

द्वारराशिस्ततो द्वारराशेस्तावत्संख्यको बाह्यसंख्यको भवति। अत एवं प्रथमदशायां द्वारं बाह्यं चैकमेव। द्वितीयदशायां द्वितीयो द्वारं, तृतीयो राशिर्बाह्यम्, एवमन्येऽपि बोध्यम्।" तस्मिन् द्वारबाह्ये मलिने पापे, पापग्रहयुते पापग्रहदृष्टे वा नवांशे (द्वारबाह्यराश्योर्नवांशदशायां) निधनं मरणं ज्ञेयम्। एवं द्वारद्वारेशयोश्च चकाराद् बाह्यबाह्येशयोर्वा मालिन्ये सति तन्नवांशे निधनं भवति। शुभदृग्योगात् द्वारबाह्ययोः शुभग्रहदृष्टियोगवशात् न (तन्नवांशदशायां मरणं न भवतीत्यर्थः)।

भा०—द्वार और बाह्य राशि मलिन (स्वयं पापराशि, या पापग्रह से युत दृष्ट) हो तो द्वार बाह्य राशि की नवांश (अन्तर्दशा) में मरण होता है। तथा द्वार द्वारेश और बाह्य बाह्येश के मालिन्य (पापसम्बन्ध) होने पर भी उनकी नवांशदशा में मरण होता है। यदि उन (द्वार बाह्य) पर शुभ ग्रह की दृष्टि अथवा योग हो तो उक्त दशा में मरण नहीं होता है।

पुनर्विशेषमाह—

रोगेशे तुङ्गे नवांशवृद्धिः ॥१७॥ तत्रापि पदेशदशान्ते, पदनवांशदशायां, पितृदिनेशत्रिकोणे वा ॥१८॥

सं०—रोगेशे (रोगः = ३२ शे, = ८ अष्टमस्तदीशे) जन्मलग्नादष्टमेशे तुङ्गे स्वोच्चस्थे नवांशवृद्धिः, अर्थात् पूर्वनिश्चितनिधननवांशदशातोऽग्रिममलिनराशिनवांशदशायां निधनं भवति। तत्रापि (नवांशवृद्धावपि) पदेशदशान्ते (लग्नपदाधीशस्थाश्रयीभूतराशेर्महादशान्ते), वा पदनवांशदशायां (लग्नपदराश्यन्तर्दशायां) वा पितृदिनेशत्रिकोणे (लग्नेशाष्टमेशाभ्यां पञ्चम-नवमराश्योर्दशायामन्तर्दशायां) वा निधनं भवति।

भा०—जन्मलग्न से अष्टमेश यदि अपने उच्च में हो तो अन्तर्दशा की वृद्धि हो जाती है, अर्थात् पूर्व निश्चित मलिन राशि की अन्तर्दशा में मरण नहीं होकर उससे अग्रिम मलिन राशि की अन्तर्दशा में मरण होता है। उसमें जन्मलग्नपद के स्वामी जिस राशि में हो उस राशि की महादशा के अन्त में, वा जन्म लग्नपद राशि की अन्तर्दशा में, अथवा लग्नेश या अष्टमेश से त्रिकोण (५।९) राशि की दशा अन्तर्दशा में

मरण होता है। अर्थात् इनमें जो विशेष मलिन हो उसकी दशा में मरण होता है। उदाहरण आगे स्पष्ट होगा।

अथ पूर्वं चरादिराशिवशेनायुर्विचारं कृत्वाऽधुना तथैव केन्द्रादिस्थानवशेन प्रकारान्तरेण दीर्घाद्यायुरानयनं कथयति—

पितृलाभरोगेशप्राणिनि कण्टकादिस्थे स्वतश्चैवं त्रिधा ॥१९॥

सं०—पितृलाभयोर्लग्नसप्तमयोर्यौ रोगेशौ 'अष्टमेशौ' तयोर्मध्ये यः प्राणी (बलवान्) तस्मिन् लग्नतः केन्द्रादिस्थानस्थिते एवं पूर्वोक्तप्रकारेण त्रिधा आयुर्मानं ज्ञेयम्। तथा स्वतः आत्मकारात्—तत् सप्तमाच्च यौ अष्टमेशौ तयोर्मध्ये यो बली तस्मिन् आत्मकारकतः कण्टकादिस्थिते त्रिधाऽयुर्मानं ज्ञेयम्—वर्षादष्टमेशे केन्द्रस्थे दीर्घायुः, पणफरस्थे मध्यमायुः, आपोक्लिमस्थेऽल्पायुरिति।

भा०—लग्न से अष्टमेश और सप्तम से अष्टमेश इन दोनों में जो बली हो वह केन्द्र में हो तो दीर्घायु, पणफर में हो तो मध्यायु, आपोक्लिम में हो तो हीनायु योग होता है। इसी प्रकार आत्मकारक और उस से सप्तम से अष्टमेशों में जो बली हो वह यदि आत्मकारक के केन्द्रादि में हो तो क्रम से दीर्घ, मध्य, अल्पायु होती है।

अथाऽत्र विशेषमाह—

योगात्समे स्वस्मिन् विपरीतम् ॥२०॥

सं०—स्वस्मिन् (आत्मकारके) योगात्समे (५७३२१ शे = ७ सप्तमभावे) स्थिते सति विपरीतं ज्ञेयम् (केन्द्रेऽष्टमेशेऽल्पायुः, पणफरस्थे मध्यायुः, आपोक्लिमस्थे दीर्घायुरित्यर्थः)। इदं वैपरीत्यमस्मादेव योगात् केन्द्रादिवशादेवायुर्विचारे ज्ञेयमिति "योगादि"ति पदेन सूचितम्। तथा च समविषमराशिवशात् क्रमोत्क्रमगणनया केन्द्रादिस्थानं ग्राह्यमित्यपि "समे" "विपरीतम्" चेति पदद्वयेन सूचितमाचार्येणेति ॥

केश्चित् "योगात् सप्तमभावात् समे नवमे स्वस्मिन् आत्मकारके सति विपरीतम् (केन्द्रेऽल्पं, पणफरे मध्यं, आपोक्लिमेऽष्टमेशे सति दीर्घमिति) पूर्वोक्ताद्व्यस्तं स्यात्" इत्यर्थः कृतः। परञ्चैवमर्थोऽसङ्गत इव भाति। यतः सप्तमान्नवमं लग्नात् तृतीय भवति, यदि तृतीयस्थानमेवाचार्यस्याभिप्रेतं तर्हि "कामे

स्वस्मिन् विपरीतम्" इत्यादि लाघवं विहाय "द्राविडप्राणायामन्यायेन" सप्तमा-न्नवम इति किमुक्तम् ? अतोऽत्र 'योगात्सम' इति चतुरक्षरवशेन ($\frac{५७३१}{१२}$ शे =७) सप्तसंख्यया सप्तमभावः प्रतिपादितो ज्ञेयः । अत्रापि सप्तमभावस्थाने "कामे स्वस्मिन्" इति किं नोक्तमेवं नाशङ्कनीयं यतः पूर्वोक्तचरराश्यादिवशादायुर्दा-ययोगेऽतिव्याप्तिवारणायैव "लाभ" स्थाने योगात्सम" इति सप्तमभावसंज्ञा समुदिता । एतेन 'योगात्' अस्मादेव योगात् आयुर्विचारे वैपरीत्यं ज्ञेयं न तु पूर्वस्मिन् योगे इति सूचनार्थमेवात्र" साभिप्रायं "योगात्सम" इति सप्तमभावसंज्ञा कृता । तथा पुरुषजातकस्य सप्तमं जायास्थानं, स्त्रीजातकस्य तु सप्तमं पतिस्थानमत एव प्रकृतिविरुद्धत्वात् सप्तमभावस्य एव कारके फलवैपरीत्यमपि समुचितमिति मध्यस्थबुद्धया विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यलं पल्लवितेन ॥

भा०—लग्न से सप्तम भाव में आत्मकारक हो तो केन्द्रादिस्थित अष्टमेश वश से दीर्घ आदि आयु विपरीत (अर्थात् केन्द्र में अष्टमेश हो तो अल्पायु, पणफर में हो तो मध्यमायु, आपोक्लिमस्थान में हो तो दीर्घायु) समझना ।

यहाँ बहुत से टीकाकारों ने—"योग (७ सप्तम भाव) से सम (९ नवम) स्थान में आत्मकारक हो तो विपरीत समझना" ऐसा अर्थ किया है । परञ्च सप्तम से नवम तो तृतीय भाव होता है यदि तृतीय भाव ही आचार्य का अभिप्रेत रहता तो "कामे स्वस्मिन् विपरीतम्" ऐसा हीं सूत्र बनाते फिर—तृतीय के लिए "सप्तम से नवम" इस प्रकार द्राविड प्राणायाम करने से क्या मतलब रहता ?

अगर ऐसा कहा जाय कि सप्तम के लिये भी लाभ पद छोड़कर "योगात्सम" यह चार अक्षर क्यों लिया गया ? इसका उत्तर यह है कि—आचार्य को केवल १९ सूत्र द्वारा साधित केन्द्रादिवश आयुर्दाय में ही वैपरीत्य तथा कारक और लग्न के सम विषम राशि वश क्रमोत्क्रम गणना से केन्द्रादि ग्रहण करने का आदेश करना है—इसलिये सप्तम भाव के लिये "योगात्समे" ($\frac{५७३१}{१२}$, शे = ७) इस प्रकार संज्ञा बनाने से उक्त दोनों अभिप्राय भी सूचित हो जाता है (अर्थात् 'योगात्'=केवल इसी योग से "समे विपरीतम्"=सम में कारक हो तो विपरीत केन्द्रादि ग्रहण करना ये भी लाघव में ही सूचित हो गये) । तथा पुरुष के लिये

सप्तम जाया स्थान है, स्त्री के लिये सप्तम पतिस्थान है, अतः पुरुष स्त्री में प्रकृति विपरीत होने के कारण कारक के सप्तम में होने से फल में भी वैपरीत्य होना समुचित है। इसलिये "योगात्सम" इन चारों वर्णवश सप्तम भाव ही समझना चाहिये।

उ०—जन्मलग्न कुण्डली देखिए आत्मकारक (शुक्र) धनु में है उससे अष्टमेश चन्द्रमा, तथा आत्मकारक से सप्तम (मिथुन) है उससे अष्टमेश शनि, इन दोनों में चन्द्रमा स्थिर राशि में होने के कारण बली है तथा चन्द्रमा आत्मकारक से आपोक्लिम स्थान में है इसलिये अल्पायु योग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार लग्न से भी विचार करना।

अथात्र बलनिरूपणमाह—

राशितः प्राणः ॥२१॥

सं०—अत्र राशितः प्राणो ज्ञेयः, "अग्रहात् सग्रहः" इत्यादि राशिबलादेव ग्रहबलं ग्राह्यमित्यर्थः। नत्वंशाधिकत्वरूपमिति ॥

भा०—इस प्रकरण में राशि के वश (अर्थात् कारकयोगः प्रथमो भानाम्" इत्यादि रूप) बल ग्रहण करना चाहिये। अंशाधिकत्व रूप नहीं।

अथ पुनर्विशेषमाह—

रोगेशयोः स्वत ऐक्ये योगे वा मध्यम् ॥२२॥

सं०—रोगेशयोः (अष्टमेशयोः) स्वत ऐक्ये (कारकेण सहाभेदे) योगे वा सति मध्यम् (मध्यायुश्चेत् मध्यं स्वयं सिद्धमेव, दीर्घायुषि हीनायुषि वा प्राप्तेऽपि मध्यमायुरेवेत्यर्थः) ॥

भा०—१९ सूत्र में कहे हुए रोगेश (अष्टमेश) स्वयं आत्मकारक हो या आत्मकारक से युक्त हो तो मध्यायु (अर्थात् हीनायु वा दीर्घायु होने पर भी मध्यायु ही) होती है। यह एक प्रकार का स्वतन्त्र योग है।

उदाहरण- जैसे प्रथमाध्याय में जन्मलग्नकुण्डली और कारक देखिए जन्मलग्न से अष्टमेश और आत्मकारक शुक्र ही है इसलिये दोनों के एक होने के कारण इस जातक की मध्यमायु सिद्ध हुई।

अथात्र केन्द्रादिस्थानवशादायुःसाधनेऽपि कक्ष्याह्रासयोगमाह—

पितृलाभयोः पापमध्यत्वे, कोणे पापयोगे वा कक्ष्या-ह्रासः ॥२३॥ स्वस्मिन्नप्येवम् ॥२४॥ तस्मिन् पापे, नीचेऽतुङ्गे-ऽशुभसंयुक्ते च ॥२५॥ अन्यदन्यथा ॥२६॥

सं०—पितृलाभयोः लग्नसप्तमयोः पापमध्यत्वे पापग्रहयोर्मध्यवर्तित्वे, वा कोणे त्रिकोणे पापयोगे सति कक्ष्याह्रासः । स्वस्मिन्नात्मकारकेऽप्येवं ज्ञेयम् । तस्मिन् कारके पापे नीचे नीचराशिस्थे, वा अतुङ्गे उच्चादन्यत्रस्थिते अशुभसंयुक्ते चापि कक्ष्याह्रासः । अन्यथाऽन्यत् अर्थात् लग्नसप्तमयोः कारकसप्तमयोर्वा शुभमध्यवर्तित्वे तत्त्रिकोणे शुभयोगे सति, तथा कारके शुभे उच्चे, अनीचे शुभयुक्ते सति कक्ष्यावृद्धिर्भवति ।

भा०—जन्मलग्न और सप्तम पापग्रहों के मध्य में हो, वा उससे त्रिकोण (९।५) पापग्रह से युक्त हो तो कक्ष्या ह्रास होता है । आत्म-कारक से भी इसी प्रकार विचार करना—अर्थात् कारक और उससे सप्तम स्थान पापग्रहों के मध्य में हो वा उससे त्रिकोण राशि पाप से युक्त हो तब भी कक्ष्या का ह्रास समझना । तथा कारक स्वयं पाप होकर नीच में हो, अथवा उच्च से भिन्न स्थान में पापग्रह से युक्त हो तब भी कक्ष्याह्रास होता है । इससे अन्यथा में अर्थात् लग्न, लग्न से सप्तम, वा कारक, कारक से सप्तम शुभग्रहों के मध्य में हो या उससे त्रिकोण शुभग्रहों से युक्त हो, वा कारक स्वयं शुभ और उच्च में वा नीच से अतिरिक्त स्थान में शुभग्रह से युक्त हो तो कक्ष्या की वृद्धि होती है ।

गुरौ च ॥२७॥

सं०—गुरौ बृहस्पतौ चैवमुक्तयुक्त्या कक्ष्याह्रासवृद्धिरवं विचार्यम् ॥

भा०—बृहस्पति से भी इसी प्रकार कक्ष्या का ह्रास या कक्ष्यावृद्धि समझना (अर्थात् बृहस्पति पाप के मध्य में हो, वा उनसे त्रिकोण में पाप हो वा नीच में हो, या उच्च से भिन्न स्थान में पाप से युक्त हो तो कक्ष्या का ह्रास, तथा शुभ के बीच में हो या बृहस्पति से त्रिकोण में

शुभ हो या नीच से भिन्न स्थान में शुभ से युक्त हो तो कक्ष्या की वृद्धि होती है)।

अथ कक्ष्यावृद्धि-ह्रासप्रसङ्गे विशेषमाह—

पूर्णेन्दुशुक्रयोरेकराशिवृद्धिः ॥२८॥ शनौ विपरीतम् ॥२९॥

सं०—उक्तशुभयोगप्रसङ्गे पूर्णेन्दुशुक्रयोर्योगे सति एकराशिवृद्धिरेव न तु कक्ष्यावृद्धिः (अर्थादन्यशुभयोगे कक्ष्यावृद्धिरिति विशेषः) एवं शनौ विपरीतम् (एकराशिह्रासः) अर्थात् पापयोगात् कक्ष्याह्रासप्रसङ्गे शनियोगे एकराशिह्रासः, न तु कक्ष्याह्रास इति । अतोऽन्यशुभयोगेऽपि पूर्णेन्दुशुक्रयोगादेकराशेरेव वृद्धिः । तथाऽन्यपापयोगेऽपि शनियोगादेकराशेरेव ह्रासो न तु कक्ष्यायाः इति फलितोऽर्थः ॥

भा०—उपरोक्त शुभयोग से कक्ष्यावृद्धि प्रसङ्ग में यदि पूर्णचन्द्र या शुक्र का योग हो तो केवल एक राशि की वृद्धि होती है। तथा पाप योग से कक्ष्या-ह्रास प्रसङ्ग में शनि का योग हो तो विपरीत (एक राशि मात्र ह्रास) होता है। अर्थात् इन से भिन्न शुभग्रह और पाप के योग से ही कक्ष्या की वृद्धि और ह्रास होता है।

इस विशेष सूत्र से यह भी स्वयंसिद्ध है कि दूसरे शुभ के योग रहने पर भी पूर्णचन्द्र या शुक्र के योग होने से एक राशि ही वृद्धि होती, तथा दूसरे पाप के योग रहने पर भी शनि के योग से एक ही राशि ह्रास भी होता है।

तथा प्राचीनोक्त दीर्घ आदि आयुर्दाय योग—

धर्मे (११) मोक्षे (५) चिरायुः स्याद्, धर्मे (११) कामे (३) च मध्यमम् ।
धर्मे (११) धने (९) च स्वल्पायुर्धर्मे (११) धर्मे (११) गतायुषः ।

अर्थ—लग्नेश अष्टमेश आदि द्वारा चर आदि राशिवश से जिस प्रकार दीर्घ आदि आयुर्निर्णय किया गया है उसी प्रकार—लग्नेश अष्टमेश, आदि योगकारक दो दो ग्रहों में एक यदि लग्न से ११ में दूसरा ५ में हो तो दीर्घायु। एक ११ में, दूसरा ३ में हो तो मध्यमायु। तथा एक ११ में दूसरा ९ में हो तो अल्पायु तथा एक ११ में दूसरा भी ११ में हो तो अनायु समझना।

तथा अल्पायु मध्यायु दीर्घायु वर्षप्रमाण सहित योगान्तर—

लग्न–लग्नेश–तद्राशिनाथभानां त्रिकोणके ।
अल्प–मध्य–चिरायूंषि रूप (१२) वर्षप्रमाणतः ॥

अर्थ—उक्त अष्टमेशादि योगकारक यदि लग्न के त्रिकोण में हो तो अल्पायु, लग्नेश से त्रिकोण में हो तो मध्यायु, लग्नेशाश्रित राशि के स्वामी से त्रिकोग (१।५।९) में हो तो दीर्घायु याग होता है। इन योगों में भी क्रम से प्रथम स्थान में १२ वर्ष, पञ्चम में २४ वर्ष, नवम में निर्णय कारक ग्रह हो तो ३६ वर्ष अल्पायु। तथा इसी प्रकार १२ वर्ष वृद्धि से मध्यायु और दीर्घायु समझना।

स्पष्टार्थ चक्र—

निर्णयकारक स्थान और वर्ष प्रमाग—

लग्न से			लग्नेश से			लग्नेशाश्रित राशि के स्वामी से		
१	५	९	१	५	९	१	५	९
१२	२४	३६	४८	६०	७२	८४	९६	१०८
त्रिविध अल्पायु			त्रिविध मध्यायु			त्रिविध दीर्घायु		

तथा सर्वार्थचिन्तामणि में आयुर्दाय योग—

"आयुर्योगस्त्रिधा प्रोक्ताः स्वल्पमध्यचिरायुषः ।
अल्पायुर्दिननाथस्य शत्रुर्लग्नाधिपो यदि ॥
समत्वे मध्यमायुः स्यान्मित्रे दीर्घायुरादिशेत् ।
बलहीने विलग्नेशे जीवे केन्द्रत्रिकोणके ॥
षष्ठाष्टमव्यये पापे मध्यमायुरुदाहृतम् ।
शुभे केन्द्रत्रिकोणस्थे शनौ बलसमन्विते ॥
षष्ठे वाऽष्टमे पापे मध्यमायुरुदाहृतम् ।
लग्ने त्रिकोणे केन्द्रे वा मध्यमायुर्विमिश्रिते ॥" इति स्पष्टार्थम् ।

अथ पूर्वोक्तायुर्योगापवादत्वेन निधनयोगमाह—

स्थिरदशायां यथाखण्डं निधनम् ॥३०॥ तत्रर्क्षविशेषः ॥३१॥

सं०—स्थिरदशायां 'अस्यैवाध्यायस्य तृतीयपादप्रतिपादितायां' यथाखण्ड खण्डमनतिक्रम्य निधन मरणं भवति । तत्र प्रथमदशाप्रदराशिमारभ्य चतुर्थान्तावधिप्रथमखण्डम्, पञ्चममारभ्याष्टमान्तावधि द्वितीयखण्डम्, नवममारभ्य द्वादशान्तावधि तृतीयखण्डम् । तत्राल्पायुश्चेत् प्रथमखण्डे, मध्यमायुश्चेद् द्वितीयखण्डे, दीर्घायुश्चेत् तृतीयखण्डे निधनमित्यर्थः । तत्र यथाखण्डनिधनेऽपि ऋक्षविशेषः (राशिविशेषो निधनकारको भवति) ।

भा०—खण्डानुसार स्थिरदशा में मरण होता है । अर्थात् तृतीय पादोक्त स्थिरदशा में प्रथमदशाप्रद राशि आरम्भ कर चतुर्थ पर्यन्त प्रथमखण्ड पञ्चम से अष्टम पर्यन्त द्वितीय खण्ड, नवम से द्वादश पर्यन्त तृतीय खण्ड है । यदि अल्पायु हो तो प्रथम खण्ड में, मध्यायु हो तो द्वितीय खण्ड में, दीर्घायु हो तो तृतीय खण्ड में निधन (मरण) होता है । उन खण्डों में भी राशि विशेष मरणकारक होता है ।

तत्रर्क्षविशेषमाह—

पापमध्ये, पापकोणे, रिपुरोगयोः पापे वा ॥३२॥ तदीशयोः केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ वा ॥३३॥ तत्राप्याद्यर्क्षारिनाथदृश्यनवभागाद्वा ॥३४॥

सं०—पापग्रहयोर्मध्ये यो राशिस्तद्दशायां, पापग्रहात् त्रिकोणे यौ राशी तद्दशायां वा रिपुरोगयोः द्वादशाष्टमयोः पापे सति, अर्थाद् यस्मात् द्वादशाष्टमयोः पापग्रहस्तद्दशायां निधनम् । वा तदीशयोः (द्वारबाह्येशयोरुपरि) केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ सत्यां द्वारबाह्यराशिदशायां निधनम् । अथवा तदीशयोर्द्वादशेशाष्टमेशयोः सपापयोः केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ द्वादशाष्टमराशिदशायां निधनम् । तत्रापि बहुष्वपि मारकराशिषु आद्यर्क्षारिनाथदृश्यनवभागाद् (आद्यर्क्षे प्रथमदशाप्रदराशिस्तस्य द्वारिः (३।२, ८) अष्टमो राशिस्तस्य नाथेन दृश्यो यो राशिस्तन्नवभागात् अन्तर्दशायामित्यर्थः) निधनं वा भवति ।

भा०—उक्त खण्डानुसार मरण योग में भी जो राशि पापग्रहों के मध्य में हो, अथवा पापग्रह से त्रिकोण में जो राशि हो, वा जिस राशि से १२, ८ में पाप ग्रह हों उसकी दशा में अथवा द्वार बाह्य राशि पर यदि केवल क्षीण चन्द्रमा और शुक्र की दृष्टि हो तो द्वार बाह्य राशि की दशा में, वा अष्टम द्वादश में केवल क्षीण चन्द्र शुक्र की दृष्टि हो तो द्वादश अष्टम राशि की दशा में मरण होता है। इस प्रकार निधनकारक दशा सिद्ध होने पर भी प्रथम दशाप्रद राशि के (अरि ३६/१२, ८ नाथ) अष्टमेश से द्वय जो राशि हो उसकी अन्तर्दशा में मरण होता है।

अथ प्रकारान्तरेण रुद्रग्रह निधनकारकराशींश्चाऽऽह—

पितृलाभ-भावेशप्राणी रुद्रः ॥३५॥ अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥३६॥ प्राणिनि शुभदृष्टे रुद्रे †शूलान्तमायुः ॥३७॥ तत्रापि शुभयोगे ॥३८॥ व्यर्कपापयोगे न ॥३९॥

सं०—पितृलाभाभ्यां लग्नसप्तमाभ्यां भावेशयोरष्टमेशयोर्मध्ये यः प्राणी बली स रुद्रसंज्ञः स्यात्। अप्राण्यपि निर्बलोऽपि पापग्रहेण दृष्टो रुद्रः स्यात्। प्राणिनि बलवति रुद्रग्रहे शुभदृष्टे सति शूलान्तमायुर्ज्ञेयम्। तत्रापि तस्मिन् शुभदृष्टेऽपि प्राणिनि रुद्रे शुभयोगे सति शूलान्तमायुर्भवति। व्यर्कपापयोगे सति न (उपरोक्त-योगो न स्यादित्यर्थः)। अत्र रवेः पापत्वं न स्वीकृतमतो रवियोगे सत्यपि योग-भङ्गो न स्यादिति ज्ञेयम्।

केचित्—"तत्र ३६/१२, २ = द्वितीये अप्राणिनि रुद्रे अपि" एवं व्याख्यान्ति तदसङ्गतम्। यतः 'कटपयादि' वर्णैः केवलं भावा राशय एव ग्राह्या न तु ग्रहा इत्याचार्येण पूर्वमेव प्रतिज्ञातमतोऽत्र वर्णै रुद्रग्रहस्यापि ग्रहणमनुचितमिव भाति। अतः 'तत्रापी' ति पदेन पूर्वयोगस्य प्राबल्यमेव प्रतिपादितमिति मतिमता मध्यस्थ-बुद्ध्या विवेचनीयम्।

भा०—लग्न से अष्टमेश और सप्तम से अष्टमेश इन दोनों में जो बली हो वह 'रुद्र' ग्रह कहलाता है। निर्बल भी पापग्रह से दृष्ट हो तो

† बहुषु पुस्तकेषु "रुद्रशूलान्तमायुः" इति पाठं प्रकल्प्य षष्ठीतत्पुरुषसमासेनार्थः प्रति-पादितः स प्रामादिक एव ज्ञेयो हेयोऽपि विद्वद्भिरिति।

रुद्र कहलाता है। रुद्रग्रह बली हो उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो शूल पर्यन्त आयुर्दाय समझना। (अर्थात् प्रथमदशाप्रद राशि से ४ राशि प्रथम शूल, तथा ५ से ८ तक द्वितीय शूल और ९ से १२ तक तृतीय शूल कहलाता है। इस क्रम से अल्पायु हो तो प्रथम शूल पर्यन्त, मध्यायु हो तो द्वितीय शूल पर्यन्त, दीर्घायु हो तो तृतीय शूल पर्यन्त, आयुर्दाय समझना)। यदि शुभ ग्रह का योग हो तो निश्चय शूलान्त आयु समझना। तथा रवि को छोड़ शेष पाप ग्रह का योग हो तो उक्त फल नहीं होता है।

मन्दारेन्दुदृष्टे शुभयोगाभावे, पापयोगेऽपि वा शुभदृष्टौ वा परतः ॥४०॥ शूले चेत्तदन्तशूले ॥४१॥ रुद्राश्रयेऽपि प्रायेण ॥४२॥ क्रिये पितरि विशेषेण ॥४३॥ द्वन्द्वे रुद्रे तदन्तं प्रायः ॥४४॥ प्रथममध्यमोत्तमेषु वा तत्तदायुषाम् ॥४५॥

सं०—रुद्रे मन्दारेन्दुदृष्टे शुभयोगाभावे सति, वा मन्दारेन्दुदृष्टे रुद्रे पापयोगे सति, वा मन्दारेन्दुदृष्टेऽपि शुभदृष्टौ सत्यामिति योगत्रये परतः प्राप्तशूलादग्रत आयुर्ज्ञेयम्। चेत् शूले प्राप्तशूले निधनं तदा तदन्तशूले प्राप्तशूलान्तिमराशिदशायां निधनं ज्ञेयमित्यर्थः। प्रायेण रुद्राश्रयेऽपि रुद्राश्रितराशिदशायामन्तर्दशायां वा निधनं भवति। क्रिये (१२) मीने पितरि (लग्नस्थे) विशेषेण रुद्राश्रितराशिदशायां निधनं भवति। रुद्रे द्वन्द्वे (४४, ८) अष्टमभावे स्थिते सति प्रायस्तदन्तं रुद्रग्रहाश्रितराशिदशान्तमायुर्ज्ञेयमित्यर्थः। प्रथममध्यमोत्तमेषु शूलेषु वा क्रमेण तत्तदायुषां हीनमध्यदीर्घायुषां निधनं भवति।

आ०—यदि रुद्र ग्रह शनि मङ्गल चन्द्रमा से दृष्ट हो तथा शुभ ग्रह से युक्त न हो, अथवा शनि मङ्गल चन्द्र से दृष्ट हो और पापग्रह से युक्त हो, वा शनि मंगल चन्द्र से दृष्ट हो तथा शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो इन तीनों योग में प्राप्त शूल से अग्रिम शूल में निधन होता है। यदि प्राप्त शूल में ही निधन योग प्राप्त हो तो शूल की अन्तिम राशि की दशा में निधन होता है। वहाँ भी रुद्राश्रित राशि की दशा अन्तर्दशा में प्रायः मरण हुआ करता है। यदि लग्न में मीन राशि हो तो विशेष करके

रुद्राश्रित राशि की दशा में ही निधन होता है। यदि लग्न से द्वन्द्व (८) अष्टम भाव में रुद्रग्रह हो तो प्रायः शूल को अन्तिम राशि की दशा में रुद्राश्रित राशि की अन्तर्दशा में निधन होता है। अवर-मध्य-दीर्घ-आयु योग में क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय शूल में ही मरण होता है।

इस प्रकरण में शुभ और पापग्रह के विषय में प्राचीन वाक्य—

"अर्कारमन्दफणिनः क्रमात् क्रूरा यथाभयम्।
चन्द्रोऽपि क्रूर एवात्र क्वचिदङ्गारकाश्रये॥
गुरुध्वजकविज्ञाः स्युः शुभखेटा यथादिमम्।
प्रत्येक शुभराशिस्थ उच्चस्थो वा बुधः शुभः॥"

सूर्य मंगल शनि और राहु ये क्रम से पाप ग्रह हैं (अर्थात् सूर्य सामान्यतया पाप हैं, उससे अधिक मंगल, मङ्गल से भी अधिक शनि, शनि से भी अधिक राहु पाप है)। तथा मंगल के आश्रय से कहीं चन्द्रमा भी पाप समझा जाता है, अन्यथा शुभ। तथा गुरु, केतु, शुक्र और बुध से यथापूर्व (अर्थात् बुध समान रूप से तथा उससे अधिक शुक्र, शुक्र से अधिक केतु, केतु से भी अधिक गुरु) शुभ ग्रह हैं। बुध शुभ की राशि में हो वा उच्चस्थ हो तो शुभ होता अर्थात् अन्यथा अशुभ होता है।

तथा रुद्र ग्रह के पापत्वशुभत्व से आयुर्निर्णय में वृद्ध वाक्य—

रुद्रयोः पापमात्रत्वे प्रथमर्क्षे मृतिर्भवेत्।
मिश्रत्वे मध्यशूलर्क्षे, शुभत्वे चान्त्यमे मृतिः॥

यदि दोनों प्रकार के रुद्र पापग्रह हों तो प्रथम शूल में, एक पाप एक शुभ हो तो द्वितीय शूल में, दोनों शुभ ही हो तो अन्तशूल में निधन होता है। अथवा एक रुद्र में भी केवल पाप सम्बन्ध हो तो प्रथम शूल में, शुभ पाप दोनों से सम्बन्ध हो तो द्वितीय शूल में केवल शुभ का सम्बन्ध हो तो तृतीय शूल में मरण समझना।

अथ प्रकारान्तरेणायुर्दायनिर्णयार्थं महेश्वरग्रहमाह—

स्वभावेशो महेश्वरः ॥४६॥ स्वोच्चे स्वभे रिपुभावेशप्राणी ॥४७॥ पाताभ्यां योगे स्वस्य तयोर्वा रोगे ततः ॥४८॥

सं०—स्वभावेशः आत्मकारकादष्टमेशो महेश्वराख्यग्रहो भवति। तत्रायं विशेषः—स्वस्मिन् आत्मकारके स्वकीय उच्चे स्वराशौ वा स्थिते रिपुभावेशप्राणी द्वादशेशाष्टमेशयोर्यो बली स महेश्वरः स्यात् । स्वस्य आत्मकारकस्य पाताभ्यां राहुकेतुभ्यां योगे सति, वा रोगे कारकादष्टमस्थाने तयोः (राहुकेत्वोः) योगे सति ततः रिपुभावेशप्राणित एव (अर्थाद्द्वादशाष्टमेशयोर्यः प्राणी स एव महेश्वर इत्यर्थः।

अत्र कैश्चित् ततः (६६/१२ शे = ६) आत्मकारकात् षष्ठः सूर्यादिक्रमगणनया यो भवति स महेश्वराख्यो भवति। एवमर्थः प्रतिपादितः सोऽयुक्त इव भाति, अतो "न ग्रहाः" कटपयादिवर्णैर्ग्रहसंख्या न कार्येति पूर्वमेवाचार्येण परिभाषित—मिति भृशं विचिन्त्य विवेचनीयम् ।

भा०—आत्मकारक से अष्टमेश महेश्वर नामक ग्रह होता है। यह सामान्य लक्षण है। फिर विशेष कहते हैं कि—यदि आत्मकारक अपनी उच्चराशि या गृह में हो तो द्वादशेश और अष्टमेश इन दोनों में जो बली हो वह महेश्वर होता है। तथा यदि राहु वा केतु से आत्मकारक युक्त हो, अथवा आत्मकारक से अष्टम में राहु वा केतु हो तो भी द्वादशेश और अष्टमेश में जो बली हो वही महेश्वर होता है।

कोई—"ततः (६६/१२, ६) कारक से सूर्यादिक्रम गणना से षष्ठग्रह महेश्वरग्रह होते हैं।" ऐसा अर्थ किया है—परञ्च ग्रह के लिये कटपयादि वर्ण से संख्या करना आचार्य की प्रतिज्ञा से विरुद्ध है। इस लिये षष्ठ ग्रह का ग्रहण करना असंगत है। उदाहरण आगे स्पष्ट है।

अथ ब्रह्मग्रहं सविशेषं कथयति—

प्रभुभाववैरीशप्राणी पितृलाभप्राण्यनुचरो विषमस्थो ब्रह्मा ॥४९॥

सं०—प्रभुः (४२/१२,६), भावः (४४/१२,८), वैरी (३२/१२,१२) एतद्भावनामीशेषु यः प्राणी बली स पितृलाभप्राण्यनुचरो (लग्नसप्तमयोर्यो बली तत्पृष्ठस्थो) विषमराशिगतोऽपि चेत् तदा ब्रह्मा ब्रह्मग्रहो भवति। सप्तमभावभोग्यांशतो लग्नस्य भुक्तांशावधि लग्नस्य पृष्ठं, लग्नभोग्यांशतः सप्तमभुक्तांशावधि सप्तमस्य पृष्ठ ज्ञेयम् ।

भा०—लग्न सप्तम में जो बली हो उस से षष्ठेश, अष्टमेश, द्वादशेश

इनमें जो बली हो वह लग्न सप्तम में जो बली हो उस के पृष्ठस्थित होकर विषम राशि में हो तो ब्रह्मसंज्ञक ग्रह कहलाता है।

अथात्र विशेषमाह—

ब्रह्मणि शनौ पातयोर्वा ततः ॥५०॥ बहूनां योगे स्वजातीयः ॥५१॥ राहुयोगे विपरीतम् ॥५२॥ ब्रह्मा स्वभावेशो भावस्थः ॥५३॥ विवादे बली ॥५४॥

सं०—ब्रह्मणि शनौ, पातयोर्वा ब्रह्मत्वे प्राप्ते ततः तस्मात् षष्ठराशिस्थग्रहः षष्ठेशो वा ब्रह्मा भवति। बहूनां ग्रहाणां ब्रह्मयोगे प्राप्ते स्वजातीयोऽधिकांशो ब्रह्मा भवति। राहुयोगे तु विपरीतं यदि राहुरन्यग्रहापेक्षयाऽल्पांशस्तदैव ब्रह्मत्वमित्यर्थः। तथा स्वभावेश आत्मकारकादष्टमेशस्तथा च भावस्थोऽष्टमस्थो ब्रह्मा भवति। विवादे सति बली यो बलवान् स एव ब्रह्मा भवति।

भा०—शनि, राहु वा केतु इनमें ब्रह्मा का लक्षण हो तो उससे षष्ठ राशिस्थ ग्रह अथवा षष्ठेश ब्रह्मा होता है। अर्थात् शनि, राहु, केतु में ब्रह्मग्रह के लक्षण होने पर ब्रह्मत्व नहीं होता है। यदि बहुत ग्रहों में ब्रह्मा होने का योग प्राप्त हो तो स्वजातीय (अधिक अंशवाला) ब्रह्मा होता है। राहु के योग में विपरीत (अर्थात् सब से अल्प अंश होने से) ब्रह्मत्व समझना। तथा आत्मकारक से अष्टमेश और अष्टमस्थानस्थित ग्रह भी ब्रह्मा होते हैं। इनमें भी विवाद होने पर जो बली हो वही ब्रह्मा होता है। उदाहरण आगे स्पष्ट है।

अथ निधनयोगं मारकग्रहांश्च कथयति—

ब्रह्मणो यावन्महेश्वरर्क्षदशान्तमायुः ॥५५॥ तत्रापि महेश्वरभावेशत्रिकोणाब्दे ॥ ५६ ॥ स्व-कर्म-चित्त-रिपु-रोगनाथप्राणी मारकः ॥५७॥ चित्तनाथः प्रायेण ॥५८॥ तदृक्षदशायां निधनम् ॥५९॥ तत्रापि कालाद् रिपुरोगचित्तनाथापहारे ॥६०॥

(इति जैमिनिसूत्रे द्वितीयाध्याये प्रथमपादः)

सं०—ब्रह्मणो ब्रह्मग्रहाश्रितराशितो महेश्वराश्रितराशिस्थिरदशान्तं आयुः स्यात् । तत्रापि महेश्वरादष्टमेशत्रिकोणाब्देऽष्टमेशात् त्रिकोणस्थराश्यन्तर्दशायां निधनमित्यर्थः । स्वात् (आत्मकारकाल्लग्नाद्वा) कर्म (३) चित्त (६) रिपु (१२) रोग (८) नाथानां मध्ये यः प्राणी बली स मारकः स्यात्, तेषु चित्तनाथः षष्ठेशः प्रायेण विशेषेण मारको भवति । तदृक्षदशायां निधनम्—तेषां मारकाणां राशिदशायां निधनं तत्रापि लग्नात् कारकाद्वा कालः ($\frac{3}{1}$,७) सप्तमस्तस्माद् रिपु (१२) रोग (८) चित्त (६) नाथानां अपहारे (अन्तर्दशायां) निधनं भवति ।

आ०—स्थिर दशा में ब्रह्मग्रहाश्रित राशि की दशा से महेश्वर ग्रहाश्रित राशि की दशा पर्यन्त आयुर्दाय समझना । उसमें भी महेश्वर से जो अष्टमेश हो उससे त्रिकोण (५।९) राशि की अन्तर्दशा में निधन होता है । आत्मकारक अथवा लग्न से तृतीयेश षष्ठेश, अष्टमेश, द्वादशेश इनमें जो बली हो वह मारक ग्रह होता है । इन मारक ग्रहों में षष्ठेश विशेष कर मारक होता है । इस (मारक ग्रहाश्रित राशि) की अन्तर्दशा में निधन होता है । वहाँ भी—लग्न वा कारक से जो काल (७) सप्तम स्थान हो उससे षष्ठेश, अष्टमेश, द्वादशेश की अन्तर्दशा में निधन होता है ।

उदाहरण—इसी अध्याय के दशा प्रकरण (तृतीय पाद) में स्पष्ट दिया गया है ।

मारक विषय में प्राचीन वाक्य—

"तुलामेषविलग्ने तु प्रायः शुक्रो भवेद्बली ।
सूर्यः कुजः शनी राहूर्निधने बलिनः क्रमात् ॥
विरोधे दुर्बलं हित्वा गृह्णीयाद्बलिनं सुधीः ।
षष्ठाष्टमेशौ भवतो मारकावष्टमेश्वरः ॥
प्रायेण मारको राशिदशास्वत्र विशेषतः ।
षष्ठमे पापभूयिष्ठे षष्ठेशो मुख्यमारकः ॥
षष्ठात् त्रिकोणगो वाऽपि ग्रहो मारक इष्यते ।
मध्यायुषि मृतिः षष्ठदशायामष्टमस्य वा ॥

षष्ठात् त्रिकोणे तु पुनर्दीर्घाल्पविषये स्मृते ।
षष्ठे बलयुते तस्य त्रिकोणे मृत्युमादिशेत् ॥
षष्ठेशश्चेद् बलाढ्यः स्यात् तत्त्रिकोणे मृतिं वदेत् ।
व्यवस्थेयं समस्तापि कारकादिदशास्वपि ॥
बलिनः शुक्रशशिनोर्ग्राह्यं षष्ठाष्टमादिकम् ।
चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरागतः ॥
स एव मारको राशिर्भवतीति विनिर्णयः ।
बहुराशिसमावेशे बलवान् मारकः स्मृतः ॥
'चरे'इत्यादिनायुर्यत् तत्समासूचितो भवेत् ।
यो राशिः स तु विज्ञेयो मारकः सूत्रसम्मतः ॥
ओजराशिगते खेटे क्रमादन्तर्दशां नयेत् ।
तत्तद्राशिनवांशायां युग्मे तु विपरीततः ॥
चरस्थिरद्विस्वभावे-ष्वोजेषु प्राक्क्रमो मतः ।
तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम् ॥
एवमुल्लिखितो राशिः पाकराशिरिति स्मृतः ।
स एव भोगराशिः स्यात् पर्याये प्रथमे स्मृतः ॥
क्रमाद् यावतिथः पाकः पर्याये यत्र दृश्यते ।
तस्मात् तावतिथो भोगः पर्याये तत्र गृह्यताम् ॥" इत्यादि ॥

इति ज्यौतिषाचार्य-श्रीसीतारामशर्ममैथिलकृते तत्त्वदर्शनाम्नि जैमिनिसूत्र-तिलके द्वितीयाध्याये प्रथमः पादः ।

अथ द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादस्तत्राऽऽदौ मातृकारक-पितृकारकौ ततो माता-पित्रोर्मरणसमयं कथयति—

रविशुक्रयोः प्राणी जनकः ॥ १ ॥ चन्द्रारयोर्जननी ॥ २ ॥ अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥ ३ ॥ प्राणिनि शुभदृष्टे तच्छूले निधनं मातापित्रोः ॥ ४ ॥

सं०—रविशुक्रयोर्यो बली स जनकः पितृकारकः । चन्द्रकुजयोर्बली जननी मातृकारकः । अप्राण्यपि निर्बलोऽपि यदि पापदृष्टस्तदा तत्कारकः स्यादेव । कारके बलवति शुभदृष्टे च तस्य कारकस्य शूले शूलदशायां मातापित्रोर्निधनं भवति ।

भा०—रवि और शुक्र में जो बली हो वह पिता (पितृकारक) होता है । तथा चन्द्र और मङ्गल में जो बली हो वह मातृकारक होता है । निर्बल भी यदि पापग्रह से दृष्ट हो तो कारक होता है । अर्थात् दोनों समबल हो तो दोनों कारक हो सकता है । मातापिता के कारक बलवान् हो और शुभग्रह से देखा जाता हो तो कारक की शूलदशा में माता पिता का निधन होता है ।

तद्भावेशे स्पष्टबले तच्छूल इत्यन्ये ॥ ५ ॥ आयुषि चान्यत् ॥ ६ ॥

सं०—कारकाष्टमेशेऽधिकबले सति तच्छूले तदष्टमेशाश्रितराशिदशायां निधनमित्यन्ये आचार्या वदन्ति । आयुषि च पित्राद्यायुर्विचारेऽन्यदपि पूर्वोक्तं सर्वं विचारणीयम् ।

भा०—मातृपितृकारक से अष्टमेश यदि अधिक बली हो तो उस (अष्टमेश) राशि की शूलदशा में माता पिता का निधन होता है इस प्रकार कोई कहते हैं । माता पिता के आयुर्दाय में और भी प्रकारान्तर जो कहे गये हैं वह भी विचार करना ।

अर्कज्ञयोगे तदाश्रिते क्रिये लग्नमेषदशायां पितुरित्येके ॥ ७ ॥ व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग् द्वादशाब्दात् ॥ ८ ॥

सं०—क्रिये लग्नाद् द्वादशे अर्कज्ञयोगे, तदाश्रिते तत्स्वामिके (अर्थादर्कबुधराशौ) सति लग्न (३) मेष (५) दशायां पितुर्निधनं भवतीत्येके कथयन्ति । पित्रोः (मातृपितृकारकयोः) व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः द्वादशाब्दात् पूर्वमेव पित्रोर्निधनं भवति ।

भा०—लग्न से १२ में रवि बुध का योग हो तथा रवि बुध की राशि (सिंह मिथुन कन्या इनमें कोई) हो तो लग्न से तृतीय और पञ्चम राशि की दशा में माता पिता का निधन होता है ।

मातृ-पितृकारक यदि रवि से भिन्न पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो १२ वर्ष पूर्व ही माता पिता का मरण होता है।

अथाऽन्येषां निधनयोगमाह—

गुरुशूले कलत्रस्य ॥ ९ ॥ तत्तच्छूले तेषाम् ॥ १० ॥

सं०—गुर्वाश्रितराशिदशायां स्त्रिया निधनम्। शेषं स्पष्टम् ॥

भा०—बृहस्पति की शूल दशा में स्त्री का निधन होता है। तथा पूर्वोक्त भ्रातृ आदि कारक की शूल दशा में भ्रातृ आदि जनों का निधन काल समझना। निधनके विषय में शूलदशा आगे पाद में कही गई है।

कर्मणि पापयुतदृष्टे दुष्टं मरणम् ॥११॥ शुभं शुभदृष्टयुते ॥१२॥ मिश्रे मिश्रम् ॥१३॥ आदित्येन राजमूलात् ॥१४॥ चन्द्रेण यक्ष्मणः ॥१५॥ कुजेन व्रणशस्त्राग्निदाहाद्यैः ॥१६॥ शनिना वातरोगात् ॥१७॥ मन्दमान्दिभ्यां विषसर्पजलोद्बन्धना-दिभिः ॥१८॥ केतुना विषूचीजलरोगाद्यैः ॥१९॥ चन्द्रमान्दिभ्यां पूगमदान्नकवलादिभिः क्षणिकम् ॥२०॥ गुरुणा शोफारुचिव मनाद्यैः ॥२१॥ शुक्रेण मेहात् ॥२२॥ मिश्रे मिश्रात् ॥२३॥ चन्द्रदृग्योगाभिश्रयेन ॥२४॥ शुभैः शुभदेशे ॥२५॥ पापैः कीकटे ॥२६॥ गुरुशुक्राभ्यां ज्ञानपूर्वकम् ॥२७॥ अन्यैरन्यथा ॥२८॥

सं०—लग्नतः कारकतो वा कर्मणि (३) तृतीये स्थाने पापग्रहयुतदृष्टे सति दुष्टं बहुक्लेशसहितं, शुभैर्युतदृष्टे शुभमल्पक्लेशपूर्वकं मरणं भवति। शेषं सर्वं स्फुटमेवेति।

भा०—लग्न वा कारक से तृतीय स्थान पापग्रह से युत दृष्ट हो तो अधिक कष्ट के साथ मरण होता है। यदि तृतीय स्थान शुभग्रह से युत दृष्ट हो तो सुख पूर्वक (अर्थात् बहुत अल्प कष्ट से ही) मरण होता है। यदि पाप शुभ दोनों से दृष्टयुत हो तो मध्यम प्रकार के कष्ट से मरण

होता है। यदि तृतीय स्थान में सूर्य हो तो राजा के हेतु से, चन्द्रमा हो तो यक्ष्मा (क्षय) रोग से, मङ्गल हो तो व्रण (फोड़ा) शस्त्र अग्नि दाह आदि द्वारा, शनि हो तो वात रोग से, शनि और गुलिक हो तो विष, सर्प, जल, बन्धन आदि से, केतु हो तो विषूचिका जल रोग आदि से, चन्द्रमा और गुलिक दोनों हो तो पकवान मदिरा आदि के खाने से क्षण भर में (अचानक) मरण होता है। बृहस्पति हो तो सोफ रोग, अरुचि वमन आदि से, शुक्र हो तो प्रमेह रोग से मरण होता है। इनमें से अनेक ग्रह तृतीय में हों तो मिले हुए उन सब रोगों से मरण समझना। यदि चन्द्रमा की दृष्टि या योग तृतीय में हो तो निश्चय करके उसी रोग से मरण होता है। तृतीय केवल शुभग्रह से युत दृष्ट हो तो शुभदेश (काशी आदि स्थान) में पापग्रह मात्र से दृष्टयुत हो तो कीकट (मगध आदि गर्हित स्थान) में मरण होता है। तृतीय में केवल गुरु शुक्र हो तो ज्ञानपूर्वक, अन्य ग्रह हो तो अज्ञान पूर्वक मरण होता है।

अथ पित्रोः संस्कारकर्मणोऽकर्तृत्वयोगमाह—

लेय-जनकयोर्मध्ये शनि-राहु-केतुभिः पित्रोर्न संस्कर्ता ॥२९॥ लेयादिपूर्वार्धे, जनकाद्यपरार्धे ॥३०॥ शुभदृग्योगान्न ॥३१॥

(इति जैमिनिसूत्रे द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादः)

सं०—लेयो ($\frac{१३}{२}$, = १) लग्नं, जनकौ मातापितरौ (मातृकारकपितृकारकावित्यर्थः) तयोर्लेयजनकयोर्मध्ये शनिराहुकेतुभिस्त्रिभिर्ग्रहैः क्रमेण पित्रोर्मातापित्रोः सस्कर्ता न स्यात् । तत्र लग्नादिकारकपर्यन्तं पूर्वार्धम्, कारकादिलग्नपर्यन्तं अपरार्धमित्युच्यते । अत एव लेयादिपूर्वार्धे लग्नादिमातृकारकावधिस्थितैः शनिराहुकेतुभिर्मातुः संस्कर्ता न स्यात् । जनकाद्युत्तरार्धे—पितृकारकादिलग्नावधिस्थितैः शनिराहुकेतुभिः पितुः संस्कर्ता न स्यात् । अन्यत् स्पष्टम् ।

भा०—लग्न और मातृ पितृ कारक के मध्य में शनि राहु केतु तीनों ग्रह पड़े तो वह माता पिता का संस्कार (और्ध्व दैहिक क्रिया रूप

कर्म) करने वाला नहीं होता है। इसी बात को स्पष्ट कहते हैं—कि लेय (लग्न) से मातृ कारक पर्यन्त पूर्वार्ध है उसमें शनि राहु केतु तीनों हो तो माता का संस्कार कर्ता नहीं होता है। तथा जनक (पितृ कारक) से लग्न पर्यन्त अपरार्ध है उसमें शनि राहु केतु तीनों हों तो पिता का संस्कार कर्ता नहीं होता है। यदि शुभग्रह की दृष्टि, वा योग हो तो उक्त फल नहीं होता, अर्थात् शुभग्रह की दृष्टि या योग हो तो संस्कार कर्ता होता है।

वि०—कितने टीकाकारों ने "लग्नादि क्रम से प्रथम षट्क पूर्वार्ध और जनक (१२) आदि उत्क्रम से द्वितीय षट्क अपरार्ध, तथा शनि राहु, केतु तीनों को ६ राशि के भीतर रहना असम्भव समझ कर शनि राहु वा शनि केतु पूर्वार्ध में हो तो माता का संस्कार कर्ता नहीं होता। तथा अपरार्ध में हो तो पिता का संस्कार कर्ता नहीं होता है" ऐसा अर्थ किया है। परञ्च इस प्रकार अर्थ परम असङ्गत है। क्योंकि राहु और केतु परस्पर सप्तम में सर्वदा रहता है इसलिये एक षट्क में राहु और द्वितीय षट्क में केतु सबकी कुण्डली में रहता है, तथा शनि चाहे राहु वाले षट्क में या केतु वाले षट्क में जरूर रहेगा तो प्रत्येक जातक की कुण्डली में माता या पिता का असंस्कारकर्तृत्व योग प्राप्त हो जायगा। परञ्च ऐसा असङ्गत है। तथा माता और पिता दोनों के संस्कारकर्तृत्वयोग किसी की कुण्डली में नहीं हो सकता है। इसलिये लेय ($\frac{3}{1}\frac{3}{2}$=१ लग्न) आदि कारक पर्यन्त पूर्वार्ध, और जनक (कारक) आदि लग्न पर्यन्त अपरार्ध मानना उचित है, इस प्रकार कदाचित् किसी की कुण्डली में एक योग तथा किसी की कुण्डली में दोनों योग घट सकते हैं।

उदाहरण—प्रथमाध्याय में कुण्डली देखिये यहाँ रवि और शुक्र में रवि बली है इसलिये रवि पितृकारक हुये। तथा चन्द्रमा और मङ्गल में मङ्गल बली है इसलिये मङ्गल मातृकारक हुए। यहाँ लग्न से मातृकारक पर्यन्त पूर्वार्ध हुआ उसमें केवल राहु है तथा पितृ कारक से लग्न पर्यन्त उत्तरार्ध है, इसके बीच में केवल शनि केतु हैं, इसलिये तीनों के नहीं होने के कारण असंस्कारकर्तृत्व योग नहीं हुआ। इसी कुण्डली में पितृ-कारक सूर्य से यदि राहु के अंश अधिक होता तो उक्त योग (पितृ का

असंस्कारकर्तृत्व) होता परञ्च राहु थोड़े अंश होने के कारण सूर्य से पीछे पड़ा है इसलिये कारकादि लग्न तक अपरार्ध संज्ञक राशि में रहने पर भी योग नहीं हुआ ॥

इति ज्यौतिषाचार्य पं० श्रीसीतारामशर्ममैथिलकृते तत्त्वादर्शनाम्नि जैमिनिसूत्रतिलके द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादः ॥

——:०:——

अथ द्वितीयाध्याये तृतीयपादस्तत्रान्तर्दशारम्भक्रममाह—

विषमे तदादिर्नवांशः ॥ १ ॥ समे आदर्शादिः ॥ २ ॥ शशि-नन्द-पावकाः क्रमादब्दाः स्थिरदशायाम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मादिरेषा ॥ ४ ॥

सं०—महादशाराशौ विषमे सति तदादिः (तद्राशिमारभ्य क्रमेण) नवांशोऽन्तर्दशा भवति । समे समराशौ आदर्शादिः (तत्सप्तमराशिमारभ्य व्युत्क्रमेण) अन्तर्दशा स्यात् । स्थिरदशायां क्रमात् (चर-स्थिर द्विस्वभावराशीनां) शशि (७) नन्द (८) पावकाः (९) अब्दा भवन्ति । एषा (स्थिरदशा) ब्रह्मादिः (ब्रह्मग्रहाश्रितराश्यादितः प्रवर्तते) इति ॥

भा०—महादशा की राशि विषम हो तो उसी राशि से आरम्भ कर क्रम से द्वादश राशियों की अन्तर्दशा होती है । तथा महादशा की राशि सम हो तो उससे सप्तम राशि से आरम्भ कर उत्क्रम से बारहों राशि की अन्तर्दशा होती है । (महादशा के द्वादशांश तुल्य अन्तर्दशा का मान होता है)। तथा स्थिर दशा में चरराशियों के ७ वर्ष, स्थिर राशियों के ८ वर्ष, द्विस्वभाव राशियों के ९ वर्ष महादशा मान होता है । तथा यह स्थिर दशा ब्रह्मग्रहाश्रित राशि से आरम्भ होती है ।

उदाहरण—"स्वभावेशो, भावस्थो ब्रह्मा" २।१।५२ इस सूत्र के अनुसार आत्मकारक (शुक्र) से अष्टमेश चन्द्रमा है, तथा अष्टमस्थ शनि है इन दोनों में बली चन्द्रमा है अतः चन्द्रमा ब्रह्म ग्रह हुआ । वह

वृश्चिक राशि में है तथा वृश्चिक सम है इसलिये वृश्चिक से आरम्भ कर उत्क्रम से १२ राशियों की स्थिर दशा सिद्ध हुई। यथा—

स्थिरदशाचक्रम्—

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन
ग्रह	चन्द्र	लग्न		केतु	शनि	
दशावर्ष	८	७	९	८	७	९
सम्वत् १९१५	१९२३	१९३०	१९३९	१९४७	१९५४	१९६३
सूर्य १० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८

राशि	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु
ग्रह	वृष		मं.	सू. बु. रा.		शु.
दशावर्ष	८	७	९	८	७	९
संवत्	१९७१	१९७८	१९८७	१९९५	२००२	२०११
सूर्य	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८

अन्तर्दशा उदाहरण—जैसे वृश्चिक की दशा में अन्तर्दशा लिखना है तो वृश्चिक समराशि है, अतः उससे सप्तम (वृष) राशि से उत्क्रम से १२ राशियों की अन्तर्दशा होगी। वृश्चिक महादशामान ८ वर्ष के द्वादशांश ८ मास प्रत्येक राशियों की अन्तर्दशा का मान हुआ। यथा—

वृश्चिकमहादशायामन्तर्दशाचक्रम्—

राशि	वृष	मे.	मी.	कुं.	म.	ध.	वृ.	तु.	क.	सिं.	क.	मि.
अन्तर्दशा	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८	० ८
संवत् १९१५	१९१६	१९१७	१९१७	१९१८	१९१९							१९२३
सूर्य १० १२ ५७ ३८	६ १२ ५७ ३८	२ १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	६ १२ ५७ ३८	२ १२ ५७ ३८							१० १२ ५७ ३८

अथ बलनिरूपणं तत्रादौ राशिबलमाह—

अथ प्राणः ॥५॥ कारकयोगः प्रथमो भानाम् ॥६॥ साम्ये भूयसा ॥७॥ तत स्तुङ्गादिः ॥८॥ निसर्गस्ततः ॥९॥

सं०—अथाऽनन्तरं प्राणो बलं कथ्यते। तत्र राशीनां कारकयोगो ग्रहयोगः प्रथमः प्राणः। साम्ये ग्रहयोगसमत्वे भूयसा ग्रहसंख्याधिक्येन बलं ज्ञेयम्। ततः ग्रहयोगसंख्यासमत्वे तुङ्गादिः, उच्चस्वगृहमित्रगृहाश्रितत्वं बलं ज्ञेयम्। ततः निसर्गः स्वाभाविकः चरात् स्थिरः, स्थिराद् द्विस्वभावो बली भवतीति ज्ञेयम्।

भा०—अब राशियों के बल कहते हैं। किसी ग्रह का योग होना राशियों का प्रथम बल है। यदि दो राशियों में ग्रहयोग हो तो जिसमें अधिक ग्रह हो वह बली होता है। यदि ग्रह संख्या भी तुल्य हो तो जिसमें स्वोच्च स्वगृह स्वमित्र गृह का ग्रह हो वह बली होता है। उसमें समता हो तो राशियों का नैसर्गिक बल (अर्थात् चर से स्थिर, स्थिर से द्विस्वभाव बली) समझना।

तदभावे स्वामिन इत्थंभावः ॥१०॥ आग्रायतोऽत्र विशेषात् ॥११॥ प्रातिवेशिकः पुरुषे ॥१२॥ इति प्रथमः ॥१३॥

सं०—तदभावे कारकयोगादिबलनिर्णयाभावे स्वामिनस्तत्तद्राशि-स्वामिनः इत्थंभावः (एवं कारकयोगादिबलविचारविधिः) ज्ञेयः । अत्र राशिस्वामिबल-विचारे आग्रायतः (आग्रं अयतः अग्रसीमां गच्छतः अंशाधिकस्य स्वामिनो) विशेषाद् बलं ज्ञेयम् । राश्यधिपत्वाद् ग्रहः पुरुष इत्युच्यते तस्मिन् पुरुषे प्राति-वेशिकः प्रतिविशतीति प्रतिवेशस्तत्सम्बन्धी प्रातिवेशिकः प्राणः, द्वादशस्थमार्गगति-ग्रहस्य द्वितीयस्थवक्रगतिग्रहस्य बलं ग्राह्यमित्यर्थः । इति प्रथमः प्राणो बलम् ।

भा०—उपरोक्त कारकयोगादि निसर्ग बलपर्यन्त समता होने से राशि के बलनिर्णय के अभाव में राशियों के स्वामी का इसी प्रकार बलविचार कर बल ग्रहण करे । उसमें भी समता होने पर अधिक अंशवाला विशेष बली समझना । तथा ग्रह में प्रातिवेशिक ग्रहाश्रित राशि में प्रवेश करने वाले ग्रह सम्बन्धी बल होता है अर्थात् ग्रह से द्वादश में मार्गी ग्रह हो अथवा द्वितीय में वक्री ग्रह हो तो ग्रह बली समझा जाता है । इस प्रकार प्रथम बल हुआ ।

स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः ॥१४॥ स्वामिनस्तृतीयः ॥१५॥ स्वात् स्वामिनः कण्टकादिष्वपारदौर्बल्यम् ॥१६॥

सं०—स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः प्राणः । स्वामिनः स्वस्वाधिपस्य तृतीय प्राणो भवति । स्वात् राशितः कण्टकादिषु (कण्टक-पणफराऽऽपोक्लिमेषु) स्वामि-नोऽपारदौर्बल्यं (परस्माद् दुर्बलः परदुर्बलस्तद्भावः पारदौर्बल्यं तन्न भवतीत्यपार-दौर्बल्यं) अर्थात् परस्मात् पूर्वराशौ बलाधिक्यं भवति, एतेन स्वस्थानात् केन्द्रे स्वामी चेत् पूर्णं, पणफरे मध्यं, आपोक्लिमे हीनं बलं भवति, अत्र स्वामिसाह-चर्यात् 'स्व' शब्देन राशिरेव ग्राह्यस्ततः केन्द्रादिस्थितस्य स्वामिनो बलं तृतीयः प्राणो भवतीत्यर्थः । अत्र—'स्वादात्मकारकात्' इति केचित् ।

भा०—स्वामी गुरु बुध की दृष्टि और इनका योग राशियों का द्वितीय बल है । तथा स्वामियों का बल राशियों का तृतीय बल है । उसी स्वामिबल को कहते हैं कि—स्वस्थान से केन्द्र में ग्रह हो तो पूर्ण पणफर में हो तो मध्य और आपोक्लिम में हो तो हीन बल समझा जाता है, इस प्रकार अपने स्वामियों की स्थिति से राशियों का तृतीय प्राण है ।

यहाँ स्वामिसाहचर्य से स्वशब्द से राशि का अपना स्थान ग्रहण करना चाहिये, आत्मकारक नहीं।

एवं राशिनां बलत्रयमुक्त्वा ग्रहे किं बलं ग्राह्यमित्याह—

चतुर्थतः पुरुषे ॥१७॥

सं०—चतुर्थतः (पापदृग्योग इत्यादि वक्ष्यमाणात्) चतुर्थबलात् पुरुषे ग्रहे बल भवति। स्वस्वामिभावसम्बन्धेन राशिः स्त्री, ग्रहस्तु पुरुषः कारकश्चेत्युच्यते।

आ०—'पापदृग्योग' इत्यादि चतुर्थ बल से ग्रह में बल समझा जाता है।

अथाऽत्र पुरुषाधिकारे बलविचारप्रसङ्गेन तच्छूलदशाः कथयति—

पितृलाभप्रथमप्राण्यादिः शूलदशा निर्याणे ॥१८॥ पितृलाभपुत्रप्राण्यादिः पितुः ॥१९॥ आदर्शादिर्मातुः ॥२०॥ कर्मादिर्भ्रातुः ॥२१॥ मात्रादिर्भगिनीपुत्रयोः ॥२२॥ व्ययादिर्ज्येष्ठस्य ॥२३॥ पितृवत् पितृवर्गे ॥२४॥ मातृवन्मातृवर्गे ॥२५॥

सं—पितृलाभाभ्यां लग्नसप्तमाभ्यां यौ प्रथमौ (अष्टमौ) तयोर्मध्ये यो बली तदादिः शूलदशा निर्याणे निधने भवति। एवं लग्नसप्तमाभ्यां यौ पुत्रौ (नवमौ) तयोर्मध्ये यः प्राणी बली तदादिः पितुर्निर्याणे शूलदशा। एवं मातृनिर्याणे बलवदादर्शादिश्चतुर्थादिः। तथा कर्मादिस्तृतीयादिर्भ्रातुः कनिष्ठस्य। तथा मात्रादिः पञ्चमादिर्भगिनीपुत्रयोः। व्ययादिरेकादशादिर्ज्येष्ठस्य। पितृवर्गे पितृवच्छूलदशा। मातृवर्गे मातृवत् निर्याणविचारे शूलदशा भवति।

आ०—लग्न से और सप्तम से जो अष्टम राशि हो उन दोनों में जो बली हो उससे आरम्भ कर शूलदशा निर्याण के विषय में होती है। इसी प्रकार लग्न सप्तम से नवम में जो बली हो तदादि पिताके निर्याण में शूलदशा होती है। इसी प्रकार माताके निर्याण में बली चतुर्थ राश्यादि। छोटे भाई के निर्याण में बली तृतीयादि। बहिन और पुत्र के निर्याण में

बली पञ्चमादि। तथा ज्येष्ठ भाई के निर्याण में बली एकादश राश्यादि शूलदशा होती है। तथा पितृवर्ग (पितृव्य आदि) के निर्याण में पिता के समान ही। और मातृवर्ग के निर्याण में माता के समान ही शूलदशा समझना।

उदाहरण—जन्मलग्न तुला से अष्टम वृष, और सप्तम भाव से अष्टम वृश्चिक इन दोनों में वृष बली है (क्योंकि दोनों स्थिर राशि हैं तथा दोनों में ग्रह योग भी तुल्य है, इसलिये नैसर्गिक बल और प्रथम बल तुल्य है। तथा गुरु के योग होने से वृष में दूसरा बल भी प्राप्त है) इसलिये वृष से आरम्भ कर शूलदशा की प्रवृत्ति होगी। इस प्रकार और की भी दशा समझना।

अथाऽत्र बलविचारप्रसङ्गे—"राशिबलसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत्" इति ब्रह्मादिग्रहे वर्षप्रमाणं कथयति—

ब्रह्मादि पुरुषे समा दासान्ताः ॥२६॥

स्थानव्यतिकरः ॥२७॥

सं०—ब्रह्मादिपुरुषे ग्रहे समाः (वर्षाणि) दासान्ता स्वराश्यन्त–संख्यातुल्या भवन्ति। अत्र स्वस्वामिभावसम्बन्धाद्ग्रहः 'पुरुषः नाथ' इत्युच्यते, राशिस्तु 'दास' इति कथ्यतेऽत एवात्र दासशब्देन स्वराशिरेव ज्ञेयः। तत्र स्थानव्यतिकरो ज्ञेयः, अर्थात् यस्य ग्रहस्य स्थानद्वयं तस्य स्वस्थानाद् दूरस्थराश्यन्ताः समा ग्राह्याः इति सूचनार्थमेव राशिस्थाने 'दास' इति प्रयुक्तमाचार्येण।

अत्र केचित्—"ब्रह्मादिः पुरुषे समा दासान्ताः" इति पाठं प्रकल्प्य-पुरुषे विषमराशौ ब्रह्मादिः ब्रह्मग्रहाश्रितराश्यादिर्ब्रह्मदशा प्रवर्तते। तथा समा दासान्ताः षष्ठराशिस्वाम्यन्ता ग्राह्याः, समे स्थानव्यतिकरः सप्तमराश्यादितो दशा प्रवर्तते" एवमर्थः कृतोऽसावयुक्त इव भाति। यतो ब्रह्मदशाफलं न कुत्रापि प्रतिपादितमिति भृशं विचिन्त्यं विपश्चिद्भिः।

भा०—(बल विचार प्रसङ्ग में राशि बल में—"बहुवर्षो बली भवेत्" याने जिसका अधिक वर्ष हो वह बली होता है, वर्ष में समता हो तो नैसर्गिक बल

लेना ऐसा कहा गया है । तथा ग्रह के लिये "राशि बलसमत्वे तु बहुवर्षो बली भवेत्" राशि बल समान होने पर बहुत वर्षवाला बली होता है । वहाँ जैसे राशि के लिये- "नाथान्ताः समाः" कहा गया है वैसा ही पुरुष (ग्रह) के लिये वर्षमान कहते हैं कि-

ग्रह आदि ग्रह की दशा में दास (अपनी राशि) पर्यन्त संख्या तुल्य वर्ष होता है । और स्थान व्यतिकर का अर्थ यह है कि जिस ग्रह के दो राशि (स्थान) हैं उसमें दूरस्थस्थान तक की संख्या तुल्य वर्ष समझे ।

वि०—थोड़े शब्दों में बहुत आशय कहने के निमित्त महर्षि जैमिनि ने सूत्रबद्ध ग्रन्थ बनाया है । अतः प्रसिद्ध ग्रह शब्द छोड़कर उसके स्थान में पुरुष, और प्रसिद्ध वर्ष शब्द के स्थान में 'समा' शब्द देकर यह भी सूचित किया कि विषम सम में क्रम उत्क्रम से गणना करके संख्याग्रहण करना चाहिये ॥

कितने टीकाकारों ने आचार्य का आशय नहीं समझकर "ग्रहादिः" ऐसा विसर्गान्त पाठ बनाकर पुरुष शब्द से 'विषम राशि समझ कर ऐसा अर्थ किया है कि पुरुष (विषम) राशि में ग्रह ग्रहाश्रित राशि में क्रमगणनानुसार दास (षष्ठ राशि स्वामी) पर्यन्त वर्षमान ग्रहादि दशा होती है । तथा स्थान व्यतिकर (सम में विपरीत क्रम से) समझना ।

परम ऐसा अर्थ करना असङ्गत है कारण अपने से छठे राशि से क्या सम्बन्ध ? जो उसके स्वामी तक संख्या दशावर्ष माना जाय ?

इसलिये—राशि और ग्रह में स्वस्वामिभाव सम्बन्ध होने के कारण दासत्व तथा नाथत्व प्रसिद्ध है । तथा पहिले राशियों के दशावर्ष के लिये "नाथान्ताः समाः" कहा गया यहाँ-कारक केन्द्रादि दशा में, ग्रह के दशावर्ष प्रमाण कहना आवश्यक है सो यहाँ बल विचार प्रसङ्ग में ही कह दिया गया । इस विषय पर मध्यस्थ बुद्धि से विद्वान लोग विचार कर जो समुचित हो ग्रहण करें । तथा जितनी प्राचीन पुस्तकें हैं उन में "ग्रहादिपुरुषे" ऐसा ही पाठ भी है ।

पुनः पुरुषे विशेषबलमाह—

पापदृग्योगः ॥ २८ ॥ तुङ्गादिग्रहयोगः ॥ २९ ॥ इति चत्वारः ॥ ३० ॥

सं०—ब्रह्मादिपुरुषे (इति पूर्वसूत्रेणाऽन्वयः) पापदृग्योगः प्राणः (बलं) भवति, यथा राशीनां स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो बलं भवति, तथा ग्रहाणां मारकादि-विचारे पापदृग्योगो बलं भवति । तथा च राजयोगादिविचारे तुङ्गादिग्रहयोगो बलं भवतीत्यर्थः । इत्येवं चत्वारः प्राणाः (बलानि) भवन्ति ।

भा०—मारकादि विचार में पापग्रह की दृष्टि और योग ग्रह का बल समझा जाता है । तथा राजयोग आदि में उच्चादि स्थित शुभग्रह के योग भी बल होते हैं । इस प्रकार चार बल हैं ।

यह चतुर्थ बल विशेष कर ग्रह के लिये कहे गये हैं । तथा राशियों के बल तुल्य होने में "तदभावे स्वामिन इत्थंभावः । २।३।१० इत्यादि स्वामियों के बल भी समझे जाते हैं ।

अथ चरदशायां वर्षगणनाक्रमं तथाऽत्र केतोः शुभत्वं चाह—

पञ्चमे पदक्रमात् प्राक्प्रत्यक्त्वं चरदशायाम् ॥३१॥ अत्र शुभः केतुः ॥३२॥

सं०—एतत्सूत्रद्वयं चरदशाप्रसङ्गे सम्यक् सोदाहरणं व्याख्यातमेवेति ।

भा०—इन दोनों सूत्र के अर्थ उदाहरण सहित १ अ० १ पा० २९ और ३० सूत्र की टीका में देखिये ।

इति ज्यौ० आ० श्रीसीतारामशर्ममैथिलकृते तत्त्वादर्शनाम्नि
जैमिनिसूत्रतिलके द्वितीयाध्याये तृतीयः पादः ॥

अथ द्वितीयाध्याये चतुर्थः पादस्तत्र चरान्तर्दशायां किं बलं ग्राह्यमित्याह—

द्वितीयं भावबलं चरनवांशे ॥ १ ॥

सं०—चरनवांशे चरान्तर्दशायां द्वितीयं भावबलं ग्राह्यम् । फलकथनार्थ-मिति शेषः ।

भा०—शुभाशुभफलकथनार्थं चरदशा को अन्तर्दशा में द्वितीय आवलक (स्वामिगुरुज्ञदृग्योग रूप) ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् जिस राशि पर अपने स्वामी, बुध, बृहस्पति की दृष्टि अथवा योग हो उस राशि का दशाफल सम्पूर्ण, अन्यथा अल्प समझना।

अथ द्वारबाह्ययोर्लक्षणं कथयति—

दशाश्रयो द्वारम् ॥ २ ॥ ततस्तावतिथं बाह्यम् ॥ ३ ॥

सं०—दशाश्रयो राशिः (यस्य चरादिका महादशा वर्तमाना स राशिः) द्वारं 'स्वदशाफलस्य द्वारत्वात्'। ततः (द्वारराशितः) तावतिथं (तावत्संख्यकं) बाह्यं प्रथमदशाप्रदराशितो यावत्संख्यो द्वारराशिस्ततो द्वारराशितस्तावत्संख्यो यो राशिः स बाह्यसंज्ञ इत्यर्थः। बाह्यराशिरेव भोग इत्यप्युच्यते भोगादग्रे फलमात्रादेव बाह्यसंज्ञापीति॥

भा०—जिस राशि की महादशा वर्तमान हो वह द्वार और प्रथम दशाप्रदराशि से द्वारराशि तक जितनी संख्या हो, फिर द्वारराशि से उतनी संख्या पर जो राशि हो वह बाह्य कहलाता है। बाह्यराशि ही भोगराशि भी कहलाता है, २६ पृष्ठ में वृद्धकारिका देखिये।

उदाहरण—जैसे चर दशा में प्रथम तुला की महादशा है, इसलिये तुला के दशाफल विचार में तुलाद्वार और तुला ही बाह्य राशि भी हुई। तथा वृश्चिक की दशामें वृश्चिक द्वार और उससे द्वितीय धनु बाह्य सञ्ज्ञक। तथा धनु की महादशा में धनु द्वार और उससे तृतीय कुम्भ बाह्यसञ्ज्ञक राशि हुई। इत्यादि आगे भी समझना॥

अथ द्वारबाह्ययोः फलान्याह—

तयोः पापे बन्धयोगादिः ॥ ४ ॥ स्वर्क्षेऽस्य तस्मिन् नोपजीवस्य ॥ ५ ॥ भग्रहयोगोक्तं सर्वमस्मिन् ॥ ६ ॥

सं०—तयोर्द्वारबाह्ययोः पापे पापग्रहे सति, नीचादिपापधर्मविशिष्टत्वेऽपि वा तद्दशायां बन्धयोगादिः अशुभफलं स्यादित्यर्थः। तस्मिन् द्वारराशौ बाह्यराशौ वा

'यस्य पापस्य योग' अस्य पापस्योपजीवस्य=गुरुसमीपगतस्य (गुरुयुक्तस्येत्यर्थः) स्वर्क्षे सति बन्धयोगादिफल न स्यात्। अस्मिन् (चरनवांशे) भग्रहयोगोक्तं सर्वं विचिन्तनीयम् जन्मकालिक दशारम्भकालिकग्रहस्थित्यनुसारं सर्वं फलं ज्ञेयमित्यर्थः।

भा०—उक्त द्वार और बाह्यराशि में पाप ग्रह हो वा पापस्वामित्व नीचग्रहाश्रितत्व आदि पापयोग हो तो उस राशि की दशा में बन्धन आदि अशुभ फल होता है। यदि द्वार बाह्य राशि में बृहस्पति से युक्त पाप हो और उस पापका द्वार बाह्यराशि अपना घर हो तो बन्धयोगादि फल नहीं होता है। इस अन्तर्दशा में राशि ग्रहयोग सम्बन्धी सब फल विचार करना। अर्थात् जन्मकालिक ग्रहस्थिति अनुसार कहे हुए फल के समान दशारम्भ कालिक ग्रह की स्थिति से भी सब फल विचार करना।

अथान्तर्दशाविधिमाह—

पितृलाभप्राणितोऽयम् ॥ ७ ॥ प्रथमे प्राक्प्रत्यक्त्वम् ॥ ८ ॥ द्वितीये रवितः ॥ ९ ॥ पृथक्क्रमेण तृतीये चतुष्टयादिः ॥१०॥

सं०—एतत्सूत्रचतुष्टयं पूर्वमेव चरदशाप्रसङ्गे सोदाहरणं व्याख्यातमेवेति।

भा०—इन चारों सूत्र का उदाहरण सहित अर्थ १ अ० १ पा० के ३० सूत्र के आगे देखिये।

एवं चरान्तर्दशाक्रममुक्त्वा केन्द्रादिदशान्तर्दशां कथयति—

स्वकेन्द्रस्थाद्याः स्वामिनो नवांशानाम् ॥११॥ पितृचतुष्टयवैषम्यबलाश्रयः स्थितः ॥१२॥ स तल्लाभयोरावर्तते ॥१३॥ स्वामिबलफलानि च प्राग्वत् ॥१४॥

सं०—कारककेन्द्रादिग्रहदशा, कारक-केन्द्रादिराशिदशेति द्विविधा केन्द्रादिदशा वृद्धवाक्यादुपलभ्यते तत्र "स्वात्स्वामिनः कण्टकादिष्वपारदौर्बल्यम्" इति सूत्रेण केन्द्रादिराशिदशा सूचिता। वर्षप्रमाणं त्वनुक्तत्वात् "नाथान्ताः समाः

प्राथेणे"ति चरदशावज्ज्ञेयम् । केन्द्रादिग्रहदशा तु 'प्रथमादिपुत्रचे' इत्यनेनैव सूचिता तत्र वर्षप्रमाणं 'समा दासान्ता' इत्युक्तमेव । अतोऽत्र तदन्तर्दशाक्रमं कथयति—स्वात् कारकात् केन्द्रस्थाद्या ग्रहाः केन्द्रादिग्रहदशायां नवांशानां स्वामिनो भवन्ति । तथा स्वात् राशेर्निजस्थानात् केन्द्रस्थाद्या राशयो नवांशानामन्तर्दशानां स्वामिनो भवन्ति । पिता ($\frac{?}{?}$,१ = प्रथम राशिस्थानं, ग्रहस्थानं वा) तत्रश्चतुश्शानां केन्द्र-पणफराऽऽपोक्लिमाभिधेयानां यद्वैषम्यक्रमबिकृतबलं तदाश्रयो राशिर्ग्रहो वा स्थितो ज्ञेयः । स नवांशः लक्षणयोः कारकतत्सप्तमयोर्लग्नसप्तमयोर्वाऽऽवर्तते प्रवृत्तो भवति । अर्थात् कारकतत्सप्तमयोः, राशितत्सप्तमयोर्मध्ये यो बलवान् ततः क्रमोत्क्रमगणनया प्रथमं तत्केन्द्रस्थाः ततः पणफरस्थाः ततः आपोक्लिमस्था यक्रमे थान्तर्दशास्वामिनो भवन्ति । राशीनां स्वामिबलफलानि "स्वामिगुरुज्ञयोग" इत्यादिबलानि, "पापे बन्धयोगादिः" इत्यादिफलानि च पूर्ववज्ज्ञेयानि ।

भा०—(ग्रह और राशि की पृथक् पृथक केन्द्रादि दशा होती है । उसको दशा और अन्तर्दशा के क्रम कहते हैं)—कारक ग्रह के अपने स्थान से केन्द्रस्थ आदि ग्रह क्रम से अन्तर्दशा के स्वामी होते हैं । इसी प्रकार राशि को केन्द्रादि दशा में भी राशि से केन्द्रस्थ आदि राशियों की अन्तर्दशा होती है । पित् (१ = राशि वा ग्रहस्थान) से केन्द्र पणफर आपोक्लिम में अधिक बल का आश्रय रहता है । अर्थात् बलक्रम से अन्तर्दशा होती है । वह नवांश (अन्तर्दशा) विषमराशि में क्रम से अपने स्थान से केन्द्रस्थ आदि की तथा सम में सप्तम से व्युत्क्रम गणना से केन्द्रस्थ आदि की अन्तर्दशा होती है । दशापति के बल ('स्वामि-गुरुज्ञदृग्योग' इत्यादि) तथा फल ('पापे बन्धमोक्षादि' इत्यादि) पूर्व-वत् समझना ।

उदाहरण—कारककेन्द्रादि दशा—

यहाँ आत्मकारक शुक्र विषमराशि धनु में है अतः उसने क्रमगणना-नुसार केन्द्र में मंगल है, इसलिये कारक के बाद मंगल की दशा हुई, उसके बाद पणफर में शनि है इसलिये शनि की दशा हुई । बाद आपो-क्लिम में सूर्य, बुध, राहु, चन्द्र, बृहस्पति, केतु हैं इनमें ग्रहयोग होने के

कारण तथा नैसर्गिक बल क्रम से सूय, बुध, राहु, चन्द्र, बृहस्पति, केतु इनकी दशा हुई। तथा वर्षगणना 'दासान्ताः समाः' सूत्रानुसार शुक्र से वृष ५, तुला तक १० होता है इसलिये अधिक संख्या १० वर्ष दशा का मान हुआ। इसी प्रकार मंगल से (सम राशि में होने के कारण) व्युत्क्रम से वृश्चिक तक ४, तथा मेष तक ११ संख्या हुई अतएव अधिक संख्या तुल्य ११ वर्ष दशामान हुआ। एवं सब ग्रह के दशावर्ष (पूर्वोक्त चर-दशावत्) क्रम उत्क्रम से गणना कर समझना। स्पष्टार्थ चक्र—

ग्रहकेन्द्रादिदशा—

ग्रह	शु.	मं.	श.	सू.	बु.	रा.	चं.	वृ.	के.
वर्ष	१०	११	६	६	८	११	८	१०	३
शाका १७८०	१७९०	१८०१	१८०७	१८१३	१८२१	१८३२	१८४०	१८५०	१८५३
सूर्य १० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

राशियों की केन्द्रादि दशा के लिये आत्मकारकाश्रित राशि धनु-विषमपदीय है, अतः उससे आरम्भ कर केन्द्रस्थ मीन, मिथुन, कन्या में ग्रहयोग होने के कारण मीन बली है, इसलिये धनु के बाद मीन की दशा हुई। मिथुन कन्या में राशिबल समान है, परञ्च "राशिबलसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत्" इस बचन से मिथुन के अधिक वर्ष हैं अतः प्रथम मिथुन तब कन्या की दशा हुई। बाद पणफरस्थ-मकर, मेष, कर्क, तुला में बलक्रम से कर्क, मकर, तुला, मेष की दशा हुई। फिर आपोक्लिमस्थ कुम्भ, वृष, सिंह, वृश्चिक में बलक्रम से कुम्भ वृश्चिक वृष सिंह को दशा हुई। राशियों के लिये वर्षमान जहाँ विशेष नहीं कहा गया हो वहाँ "नाथान्ताः समाः" चरदशावत् ग्रहण होता है। स्पष्टार्थ चक्र देखिये।

कारक केन्द्रादिदशाचक्रम्—

धनु	मीन	मिथुन	कन्या	कर्क	मकर	राशि
५	१०	८	७	८	६	वर्ष
१७८०	१७८५	१७९५	१८०२	१८१०	१८१८	शाके
१० १२ ५७ ३८	,,	,,	,,	,,	,,	,,

तुला	मेष	कुम्भ	वृश्चिक	वृष	सिंह	राशि
२	११	११	९	६	६	वर्ष
१८२४	१८२६	१८३७	१८४८	१८५७	१८६३	शाके १८६९
१० १२ ५७ ३८	,,	,,	,,	,,	,,	,,

अथ अन्तर्दशोदाहरण—

यहाँ प्रथम धनु राशि की दशा में अन्तर्दशा विचार करना है तो धनु और उस से सप्तम मिथुन में धनु बलवान है अतः धनु से क्रम-गणनानुसार उपरोक्तवत् केन्द्रस्थ—पणफरस्थ—आपोक्लिमस्थ—राशियों की अन्तर्दशा प्राप्ति हुई। महा दशामान ५ वर्ष है, अतः प्रत्येक राशियों का पाँच पाँच मास अन्तर्दशामान हुआ। स्पष्टार्थ चक्र देखिये।

धनुराशि की केन्द्रादि दशा में अन्तर्दशा चक्र—

धनु	मीन	मिथुन	कन्या	कर्क	मकर	राशि
० ५	० ५	० ५	० ५	० ५	० ५	मास
१७८०	१७८१	१७८१	१७८२	१७८२	१७८२	शाके
१० १२ ५७ ३८	३ १२ ५७ ३८	८ १२ ५७ ३८	१ १२ ५७ ३८	६ १२ ५७ ३८	११ १२ ५७ ३८	सूर्य

तुला	मेष	कुम्भ	वृश्चिक	वृष	सिंह	राशि
० ५	० ५	० ५	० ५	० ५	० ५	मास
१७८३	१७८३	१७८४	१७८४	१७८४	१७८५	शाके
४ १२ ५७ ३८	९ १२ ५७ ३८	२ १२ ५७ ३८	७ १२ ५७ ३८	० १२ ५७ ३८	५ १२ ५७ ३८	सूर्य १० १२ ५७ ३८

इसी प्रकार ग्रहों की दशा में ९ ग्रहों को अन्तर्दशा होती है इस लिये दशावर्ष के नवांश अन्तर्दशा का मान होता है।

अथ निर्याणलाभादिफले "मण्डूक" नामान्तर्दशाक्रमं कथयति—

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयो मण्डूकस्त्रिकूटः ॥१५॥ निर्याणलाभादिशूलदशाफले ॥१६॥

सं०—निर्याणलाभादिशूलदशाफले (निर्याणस्य निधनस्य लाभः प्राप्तिसमयः, आदिशब्दाद्रोगादिस्तत्फलविचारे शूलदशाफले) स्थूलादर्शवैषम्याश्रयस्त्रिकूटो मण्डूको मण्डूकाख्यान्तर्दशा भवति। स्थूलः (३/२, शो = १ = प्रथमः) आदर्शः (सप्तमः)

अनयोर्मध्ये यस्य वैषम्यं बलाधिक्यं तदाश्रयोऽयं मण्डूकनवांशो ज्ञेयः (लग्नसप्तमयोर्बलवन्तमारभ्य प्रवर्तते इत्यर्थः)।

भा०—निधन रोग आदि अशुभ फल के विचारार्थ शूल दशा में प्रथम (महादशाश्रय राशि) तथा उससे सप्तम में जो बली हो उससे आरम्भ कर त्रिकूट (चर, स्थिर, द्विस्वभाव इन तीनों के) क्रम से अन्तर्दशा होती है।

इसमें मण्डूक (मेढ़क) के समान उछलकर (बीच की दो राशि छोड़) चौथी राशि की अन्तर्दशा आती है इसलिये इसका 'मण्डूक' अन्वर्थ नाम है। अन्तर्दशा के क्रम में वृद्ध कारिका यथा —

"लग्नसप्तमयोर्मध्ये　　　बलवांस्तद्दशाश्रयः।
विषमे तु तदादिः स्यात् समे व्युत्क्रमतः स्मृतः॥
केन्द्रादिक्रमतो　　यस्मादुत्पत्त्योत्पतनं　　पुनः।
तस्मान्मण्डूकनाम्नीय　　बुधैरन्तर्दशा　　स्मृता॥" इति स्पष्टार्थम्।

शूलदशा उदाहरण—

पीछे जन्मलग्न कुण्डली देखिये—लग्न से अष्टम वृष, और सप्तम से अष्टम वृश्चिक इन दोनों में वृष बली है इसलिये (२ पाद १८ सूत्रानुसार) वृषराशि से उत्क्रम से १२ राशियों की शूलदशा समझना। वर्ष प्रमाण—जहाँ विशेष नहीं कहा गया हो वहाँ चरदशावत् ("नाथान्ताः समाः" इसके समान ही) ग्रहण करना।

उक्त प्रकार से शूलदशा में अन्तर्दशा क्रम—जैसे वृष की दशा में अन्तर्दशा विचार करना है तो प्रथम वृष, और उससे सप्तम वृश्चिक इन दोनों में बृहस्पति के योग होने के कारण वृष बली है। इसलिये वृष से उत्क्रम से (केन्द्रस्थित) वृष, कुम्भ, वृश्चिक, सिंह की, फिर मेष, मकर, तुला, कर्क की, बाद में मीन, धनु, कन्या, मिथुन की अन्तर्दशा सिद्ध हुई। इसी प्रकार मिथुन की दशा में मिथुन और उससे सप्तम धनु इन दोनों में धनु बली है इसलिये धनु में (विषम राशि होने के कारण) क्रम से धनु, मीन, मिथुन, कन्या, मकर, मेष, कर्क, तुला, कुम्भ, वृष, सिंह,

वृश्चिक की मण्डूकान्तर्दशा हुई। दशावष के द्वादशांश अन्तर्दशा का मान समझना। स्पष्टार्थ चक्र—

वृष की दशा में मण्डूकान्तर्दशाचक्र—

राशि	वृष	कुम्भ	वृश्चिक	सिंह	मेष	मकर
वर्ष मास	० ७	० ७	० ७	० ७	० ७	० ७
शाके	१७८०	१८८१	१८८२	१८८२	१८८३	१८८३
सूर्य	१० १२ ५७ ३८	५ १२ ५७ ३८	० १२ ५७ ३८	७ १२ ५७ ३८	२ १२ ५७ ३८	९ १२ ५७ ३८
राशि	तुला	कर्क	मीन	धनु	कन्या	मिथुन
वर्ष मास	० ७	० ७	० ७	० ७	० ७	० ७
शाके	१८८४	१८८४	१८८५	१८८६	१८८६	१८८७
सूर्य	४ १२ ५७ ३८	११ १२ ५७ ३८	६ १२ ५७ ३८	१ १२ ५७ ३८	८ १२ ५७ ३८	३ | १० १२ | १२ ५७ | ५७ ३८ | ३८

अथ ग्रहाणां नक्षत्रदशादेशं कथयति—

पुरुषे समाः सामान्यतः ॥१७॥

सिद्धा उडुदाये ॥१८॥

सं०—उडुदाये नक्षत्रायुर्दाये (विंशोत्तरीदशायां, अष्टोत्तरीदशायां च) पुरुषे ग्रहे समा अब्दाः सामान्यतः (गर्गादिप्रणीतजातकग्रन्थत एव) सिद्धाः प्रसिद्धा ज्ञेयाः। नक्षत्रदशा तु ग्रहाणामेव भवति, न राशीनामित्येव 'पुरुषे' इति पदं

प्रयुक्तमाचार्येण । अत्र बहवो व्याख्यातारो विषमराशिभ्रमावर्ते बभ्रमुरिति विविच्य विभावनीयं विद्वद्भिः ।

भा०—उडुदाय (नक्षत्र दशा में) पुरुष (ग्रहों) के वर्ष सामान्य शास्त्र (गर्गादिमुनिप्रणीत ग्रन्थ) से प्रसिद्ध ही है ।

प्रसङ्गवश विंशोत्तरीदशा साधनप्रकार—

यथा—कृत्तिकातः समारभ्य त्रिरावृत्य दशाधिपाः ।
सूर्येन्दुकुजराह्विज्य—शनिज्ञशिखिभार्गवाः ॥
दशा समाः क्रमादेषां षड्दशाश्वा गजेन्दवः ।
नृपाला नवचन्द्राश्च नगचन्द्रा नगा नखाः ॥

अर्थ—कृत्तिका से आरम्भ कर तीन आवृत्ति करके नौ-नौ नक्षत्रों के क्रम से सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र ये दशाधीश होते हैं । इन के क्रम से ६,१०,७,१८,१६,१९,१७,७,२० वर्ष दशा के मान होते हैं ।

दशा के भुक्तभोग्यानयन—

दशामान भयातघ्नं भभोगेन हृतं फलम् ।
भुक्त वर्षादिक ज्ञेयं भोग्यं भोग्यवशात्तथा ॥

अर्थ—जिस ग्रह की दशा में जन्म हो उस ग्रह की दशावर्ष संख्या को भयात से गुनाकर भभोग के भाग देने से लब्धि वर्षादिक दशा का भुक्त होता है । उसको दशावर्ष संख्या में घटाने से दशा का भोग्य वर्षादि होता है । अथवा भयात को भभोग में घटाने से भभोग्य होता है उसको दशा मान से गुनाकर भभोग से भाग देने से दशा का भोग्य वर्षादि होता है ।

उदाहरण—जन्मलग्न देखिए—विशाखा नक्षत्र का भयात ५०।१४ भभोग ६०।२६ भभोग्य १०।१२ विशाखा नक्षत्र में दशाधीश बृहस्पति है अतः बृहस्पति के वर्ष प्रमाण १६ से भोग्य १०।१२ को एक जातीय पल ६१२ को गुना करने से ९७९२ इसमें भभोग ६०।२६ के एक जातीय ३६२६ से भाग देकर लब्ध वर्षादि २।८।१२।१०।४३ यह दशा का भोग्यमान हुआ । अतः—

विंशोत्तरी दशाचक्र—

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग
वर्षादि	२ ८ १२ १० ४३	१९	१७	७	२०	६	१०	७	१८	१०६ २ ८ १२ १० ४३
शाके	१७८०	१७८३	१८०२	१८१९	१८२६	१८४६	१८५२	१८६२	१८६९	१८८७
सूर्य	१० १२ ५७ ३८	६ २५ ८ २१	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	६ २५ ८ २१

अथाऽन्तर्दशाप्रकार—

दशा स्वस्वप्रमाणेन हता खार्कैर्हृता फलम् ।
अन्तर्दशा भवेदेवं प्रत्यन्तरदशादयः ॥

अर्थ—जिस ग्रह की दशा में प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा साधन करना हो, उसकी दशा को अपने अपने दशावर्ष प्रमाण से गुना कर १२० के भाग देने से लब्धि वर्षादि ग्रहों की अन्तर्दशा होती है। इसी प्रकार अन्तर्दशा को अपने अपने दशावर्ष प्रमाण से गुनाकर १२० के भाग देने से उस अन्तर्दशा में सब ग्रहों के प्रत्यन्तरदशा होती है। इसी तरह प्रत्यन्तर से विदशा आदि भी समझना। विस्तार के भय से सब उदाहरण चक्र यहाँ नहीं दिये गये हैं। विशेष लघुपाराशरी में देखिये।

तथा अष्टोत्तरी दशाक्रम—

चतुस्त्रिभक्रमाद्रौद्रादष्टोत्तर्य्यां दशाधिपाः ।
सूर्येन्द्वारज्ञसौरेज्य—राहु—शुक्राः क्रमादमी ॥
"रसाब्धितिथ्यो गजाऽत्यष्टिदिग्नोतिघृतिभास्कराः ।
स्वर्गा" इति क्रमात्तेषां दशाब्दाः परिकीर्तिताः ॥

भा०—आर्द्रा से ४, फिर ३, फिर ४, फिर ३ इस क्रम से २८ नक्षत्रों में क्रम से सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु और शुक्र ये आठ ग्रह अष्टोत्तरी में दशाधिप होते हैं। क्रम से ६।१५।८ १७।१०।१९। १२।२१ ये आठों ग्रह के दशावर्ष प्रमाण होते हैं।

स्पष्टार्थ चक्र—

ग्रह	सूर्य. ६				चन्द्र १५			मंगल ८				बुध १७		
नक्षत्र	आ	पु.	पु.	श्ले.	म.	पू.	उ.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.
वर्ष	१	१	१	१	५	५	५	२	२	२	२	५	५	५
मास	६	६	६	६	०	०	०	०	०	०	०	८	८	८

ग्रह	शनि १०				बृहस्पति १९			राहु १२				शुक्र २१		
नक्षत्र	पू.	उ.	अ.	श्र.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.
वर्ष	२	२	२	२	६	६	६	३	३	३	३	७	७	७
मास	६	६	६	६	४	४	४	०	०	०	०	०	०	०

अथ दशाभुक्त भोग्य साधन प्रकार—

भुक्त-भोग्यघटीनिघ्न दशामानं भभोगहृत् ।
भुक्त-भोग्यभमानाढ्य, भुक्तं भोग्यं दशामितेः ॥

भा०—वर्तमान नक्षत्र की भुक्त और भोग्यघटी से उस नक्षत्र के दशामान को गुना कर भभोग के भाग देने से लब्धि को क्रम से भुक्त रीति में भुक्तनक्षत्र और भोग्य रीति में भोग्य नक्षत्र के दशा मान में जोड़ने से भुक्त और भोग्य दशा होती है।

उदाहरण—वर्तमान फल के लिये दशा का भोग्य साधन करना है इसलिये भयात ५०।१४ को भभोग ६०।२६ में घटाने से भोग्य घटी १०।१२ हुई। विशाखा नक्षत्र में जन्म है इसलिये (मङ्गल) दशाधिप

हुआ। उसके वर्ष २ को भोग्य घटी १०।१२ पलात्मक ६१२ से गुना करने से १२२४ इसमें पलात्मक भभोग के भाग देने से लब्धि वर्षादि भोग्य ०।४।१।३१।२०। आगे भोग्य नक्षत्र नहीं है इसलिये यही मङ्गल की अष्टोत्तरी भोग्य दशा हुई॥

अथवा भुक्त रीति से उदाहरण—विशाखा के भयात ५०।१४ पलात्मक ३०१४ को वर्षमान २ से गुना करने से ६०२८ इसमें पलात्मक भभोग ३६२६ के भाग देने से लब्ध विशाखा का भुक्तवर्षादि १।७ २८। २८।४० इसमें मङ्गल के भुक्त नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाती) के वर्ष ६ जोड़ने से भुक्त दशावर्षादि ७।७।२८।२८।४० इसको पूर्ण वर्षमान ८ में घटाने से भोग्य वर्षादि ०।४।१।३१।२० मङ्गल की दशा पूर्व तुल्य ही हुई॥

स्पष्टार्थ अष्टोत्तरीदशाचक्र—

दशेश—	म.	बु.	श.	बृ.	रा.	शु.	र.	चं
व.	०	१७	१०	१९	१२	२१	६	१५
मा.	४	०						
दि.	१	०						
घ.	३१	०						
प.	२०	०						
शाके १७८०	१७८१	१७९८	१८०८	१८२७	१८३९	१८६०	१८६६	१८८१
सूर्य १०	२	,,	,,	,,	,,	,,	,,	२
१२	१३							१३
५७	२८							२८
३८	५८							५८

अथ योगार्धदशाप्रमाणं कथयति—

जगत्तस्थुषोरर्धं योगार्धे ॥१९॥

स्थूलादर्श वैषम्याश्रयमेतत् ॥२०॥

सं०—जगत्तस्थुषोः चरस्थिरदशाब्दमानयोरर्धं योगार्धे योगार्धदशायां वर्ष-मान भवति। एतत् (योगार्धं) स्थूलादर्शवैषम्याश्रयं (लग्नसप्तमयोर्यस्य वैषम्यं बलाधिक्यं ततः समारम्य प्रवर्तत इत्यर्थः)।

भा०—प्रतिराशि में चरदशावर्ष और स्थिरदशावर्ष के योग का आधा योगार्ध दशा में वर्ष का प्रमाण होता है। यह योगार्धदशा लग्न सप्तम में जो बली हो उससे आरम्भकर १२ राशियों की होती है।

उ०—जन्मलग्न तुला उससे सप्तम मेष है इन दोनों में बृहस्पति की दृष्टि होने के कारण तुला बली है इसलिये तुला से क्रम से १२ राशियों की दशा हुई। वर्षप्रमाण तुला के चरदशावर्ष २ स्थिर दशावर्ष ७ इनके योगार्ध ४।६ चारवर्ष छः मास हुए। इसी प्रकार सब के वर्ष प्रमाण समझना।

योगार्ध दशा—

तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	राशि
४	८	७	६	७	९	वर्ष
६	६	०	६	६	६	मास
१७८०	१७८५	१७९३	१८००	१८०७	१८१४	शाके
१०	४	१०	१०	४	१०	सूर्य
१२	१२	१२	१२	१२	१२	
५७	५७	५७	५७	५७	५७	
३८	३८	३८	३८	३८	३८	

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	राशि
९	७	८	७	७	८	वर्ष
०	६	६	६	०	०	मास
१८२४	१८३३	१८४०	१८४९	१८५६	१८६३	१८७१
४	४	१०	४	१०	१०	१०
१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७
३८	३८	३८	३८	३८	३८	३८

अथ दृग्दशां कथयति—

कुजादिस्त्रिकूटपदक्रमेण दृग्दशा ॥२१॥

सं०—कुजादिः (कुजः ६१२, शे = ९ लग्नान्नवमस्तदादिः) त्रिकूटपदक्रमेण चरस्थिरद्विस्वभावक्रमेण दृग्दशा। लग्नान्नवमराशेः प्रथमदशा ततस्तद्दृग्योग्यराशित्रयस्य। ततो लग्नाद्दशमस्य तद्दृग्योग्यराशित्रयस्य। ततो लग्नादेकादशस्य तद्दृग्योग्यराशित्रयस्येति द्वादशराशीनां दशा भवन्तीत्येव दृग्दशेति संज्ञाप्यन्वर्थैव। वर्षप्रमाणं तु दृक्क्रमस्य स्थिरत्वात् स्थिरदशोक्तमेव ग्राह्यम्।

भा०—लग्न से नवम राशि आरम्भ कर त्रिकूटपद (चर स्थिर द्विस्वभाव) के क्रम से दृष्टि अनुसार १२ राशियों की दृग्दशा होती है॥

वि०—वर्ष प्रमाण स्थिरदशा में कहे हुए ही समझना। कारण यहाँ यह क्रम एक रूप कहा गया है। जो आगे के सूत्र से स्पष्ट है। चरदशा में लग्न से आरम्भ कर नवमराशि के पद क्रम से क्रम व्युत्क्रम गणना होती है। इस लिये चर दशा अन्वर्थ नाम है। यहाँ नवम से ही आरम्भ होकर प्रथम नवम की तब नवम को तीनों दृश्य राशियों की उनमें भी जिस पार्श्व की राशि समीप हो उस क्रम से ही— (अर्थात् चरराशियों में उत्क्रम से स्थिर राशियों में क्रम से ही, और द्विस्वभाव में विषम हो तो क्रम से सम हो तो उत्क्रम से) दृष्टिमार्ग ग्रहण करना चाहिये। इस बात को आगे के सूत्र (२२।२३) से कहते हैं।

अथ राशीनां दृष्टिमार्गक्रममाह—

मातृधर्मयोः सामान्यम्, विपरीतमोजकूटयोः ॥२२॥ यथासामान्यं युग्मे ॥२३॥

सं०—(चरदशायां गणनाक्रमविधौ "प्राचीवृत्तिर्विषममेषु ॥१।१।२६॥ पराचृत्योत्तरेषु १।१।२७॥" इति सूत्रद्वयं सामान्यं। तथा "न क्वचित् १।१।२८॥" इति सिंहकुम्भयोर्वृषवृश्चिकयोर्विशेषं कथितम्। एतत्सूत्रवशेनैवाऽत्र दृङ्मार्गक्रमं कथयति) मातृधर्मयोः सिंहकुम्भयोः गणनाक्रमो सामान्यं 'प्राचीवृतिर्विषममेषु' इत्येव ज्ञेयः। तथा ओजकूटयोः विषमपदस्थयोः मेषतुलयोः, वृषवृश्चिकयोश्च विपरीतम्, अर्थात् मेषतुलयोर्विषमयोरपि व्युत्क्रमेण, वृषवृश्चिकयोः समयोरपि क्रमेण दृग्गणनाक्रमो ज्ञेयः। युग्मे द्विस्वभावे, तथा युग्मपदस्थसमराशौ तु यथासामान्यं विषमे क्रमेण, समे व्युत्क्रमेणैव गणनीयमित्यर्थः। एतेन चरराशिषूत्क्रमेण, स्थिरराशिषु क्रमेण, द्विस्वभावेषु विषमे सति क्रमेण समे सति व्युत्क्रमेण गणनया स्वाङ्-

चरस्थादिराशय एव दृष्टिमार्गंगता भवन्तीत्येव युक्तिपथमपि समायातीति विवेचनीयं विवेकिभिः ।

(इन दोनों सूत्र से दृष्टिराशियों में गणना क्रम कहते हैं)

भा०—सिंह और कुम्भ में सामान्य (प्राचीवृत्तिर्विषमभेषु) सूत्रानुसार क्रम से दृष्टिवश राशियों की गणना करनी चाहिए। तथा विषमपदस्थ मेष, तुला, और वृश्चिक में विपरीत (अर्थात् विषम होने पर भी मेष तुला में उत्क्रम और सम होने पर भी वृष, वृश्चिक में क्रम से इस प्रकार सामान्य वचन से उलटा) दृष्ट राशियों को गणना करनी चाहिये। तथा युग्म (द्विस्वभाव और समपदस्थ सम राशि कर्क मकर) में सामान्य सूत्र से (विषम हो तो क्रम से, सम हो तो उत्क्रम से) ही दृष्टराशियों को ग्रहण करना चाहिये ।

त्रि०—प्राचीन टीकाकारों ने अन्यथा ही (सूत्र से विरुद्ध) अर्थ करके चरराशियों में क्रम से ५।८।११ राशियाँ, और स्थिरराशियों में उत्क्रम से ५।८।११ राशियाँ दृग्योग्य मानी हैं। परञ्च दृष्टि चक्र में स्पष्ट है कि प्रत्येक राशि अपने सम्मुख और पार्श्वराशियों को देखती है। उन में जिस पार्श्व को राशि समीप हो उस पार्श्वक्रम से गणना होनी चाहिये, सो चर राशियों में उत्क्रम से ३, ६, ९ और स्थिरराशियों में क्रम से ३, ६, ९ और द्विस्वभाव में विषम (मिथुन, धनु) में क्रम से तथा सम (कन्या, मीन) में उत्क्रम से आने से ४, ७, १० वीं राशियाँ दृग्योग्य होती हैं, अतः ५।८।११ की अपेक्षा ३।६।९ दृष्टिरथ समीप होता है। इसी प्रकार मानने से सूत्रार्थ भी संगत होता है। स्पष्टार्थ पूर्व लिखित दृष्टि चक्र देखिये ॥

उदाहरण—तुला लग्न है। उससे नवमा मिथुनराशि द्विस्वभाव है इस लिये पहिले मिथुन को तब उससे दृग्योग्य कन्या धनु मीन की, फिर उस के बाद कर्क की तथा उत्क्रम से उस की दृग्योग्य वृष, कुम्भ, वृश्चिक की, उसके बाद सिंह की और क्रम से उसको दृग्योग्य तुला मकर मेष राशियों की दृग्दशा हुई। स्पष्टार्थ चक्र देखिये ॥

हद्दशाचक्र—

मिथुन	कन्या	धनु	मीन	कर्क	वृष	राशि
९	९	९	९	७	८	वर्ष
१७८०	१७८९	१७९८	१८०७	१८१४	१८२३	शाके
१० १२ ५७ ३८	,,	,,	,,	,,	,,	सूर्य ,,

कुम्भ	वृश्चिक	सिंह	तुला	मकर	मेष	राशि
८	८	८	७	७	७	वष
१८३१	१८३९	१८४७	१८५५	१८६२	१८६९	शाके १८७६
१० १२ ५७ ३८	,,	,,	,,	,,	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८ सूर्य

अथ त्रिकोणदशाक्रमं तत्फलं च कथयति—

पितृमातृधनप्राण्यादिस्त्रिकोणे ॥२४॥

तत्र द्वारबाह्याभ्यां तद्वत् ॥२५॥

सं०—पितृमातृधनेषु लग्नपञ्चमनवमेषु यः प्राणी बली तदादिः त्रिकोणे त्रिकोणदशायां दशाक्रमः स्यात् । तत्र तस्यां त्रिकोणदशायां तद्वत् पूर्वोक्तचरदशावत् वर्षप्रमाणं, अन्तर्दशाक्रमश्च ज्ञेयः । तथा द्वारबाह्यराशिभ्यां तद्वदेव फलमपि विचार्यम् । यथोक्तं प्राचीनैः—

"लग्नत्रिकोणे यो राशिर्बलवानुक्तहेतुभिः ।
तमारभ्योन्नयेद्धीमान् चरपर्यायवद्दशाम् ॥" इति दशाक्रमः ।

अन्तर्दशाक्रमः—"ओजे लग्ने तदादिः स्याद् युग्मे तत्सप्तमादितः ।
विषमे क्रमतो ज्ञेया समे व्युत्क्रमतो मता ॥" इति ॥

भा०—लग्न, पञ्चम, नवम में जो बली हो उससे आरम्भ कर त्रिकोण दशा की प्रवृत्ति होती है। उस त्रिकोण दशा में पूर्वोक्त चर-दशावत् अन्तर्दशा, दशाक्रम और वर्ष प्रमाण तथा द्वार बाह्य राशियों से फल का विचार करना।

उ०—लग्न कुण्डली देखिये—लग्न पञ्चम नवम में पञ्चम कुम्भ बलवान् है इसलिये पहिले कुम्भ और उससे त्रिकोणस्थ (५।९) राशि को, फिर मीन और उससे पञ्चम नवम, फिर मेष और उससे पञ्चम नवम, पुनः वृष और उससे पञ्चम नवम की दशा हुई। वर्ष प्रमाण चरदशातुल्य समझना।

त्रिकोण दशाचक्र—

कुम्भ	मिथुन	तुला	मीन	कर्क	वृश्चिक	राशि
७	८	२	१०	८	९	वर्ष
१७८०	१७८७	१७९५	१७९७	१८०७	१८१५	शाके
१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	सूर्य

मेष	सिंह	धनु	वृष	कन्या	मकर	राशि
११	६	५	७	७	६	वर्ष
१८२४	१८३५	१८४१	१८४६	१८५३	१८६०	शाके १८६६
१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	१० १२ ५७ ३८	सूर्य

अथात्र फलादेशमाह—

घासगैरिकात् पत्नीकरात् कारकैः फलादेशः ॥२६॥

सं०—घासगैरिकात् ($\frac{12307}{12}$, शे = ७) सप्तमात्, पत्नीकरात् ($\frac{2105}{12}$, शे = १) लग्नात् कारकैस्तत्तत्कारकैः फलादेशः (अर्थात् स्त्रीकारकैः सप्तमात्, पुरुषकारकैर्लग्नात् फलादेशः) कर्तव्यः। अथवा घासगैरिकात् (९,७,३,२,१भावतः) पत्नीकरात् (पत्नी = १, करः $\frac{21}{12}$, नवमस्ततः) कारकैस्तत्तत्कारकैः फलानां शुभाशुभानामादेशः कर्तव्यः। अथवा घासः ($\frac{69}{12}$, = ७ सप्तमस्तस्मात् स्त्रीकारकैः स्त्रियाः) गैरिक $\frac{123}{12}$, शे = ३ तृतीयस्तस्माद् भ्रातृकारकैर्भ्रातुः) पत्नी (१ = प्रथमस्तस्मात् आत्मकारकैः स्वदेहस्य) करः $\frac{21}{12}$, ९ = नवमस्तस्मात्पितृकारकैः पितुः) फलादेशः कर्तव्य इत्याद्यनेकार्थसूचनार्थमेवैवं सूत्रं निबद्धं मुनिवरैरिति दिक् ॥ अथवा घासगैरिकात्पत्नी ७,३,१ भावतः करात् (नवमात्) कारकैः कारकस्थित्या फलादेशः कर्तव्यः ॥

भा०—सप्तमभाव से स्त्री कारक की स्थिति के अनुसार स्त्रियों का तथा लग्न से कारक की स्थिति के अनुसार अपना शुभाशुभ फल का आदेश करना चाहिये।

वि०—यहाँ सप्तम भाव के लिये—घा-स-गै-रि-क "यह पाँच अक्षरों की संज्ञा तथा लग्न के लिये—पत्नी-कर यह चार अक्षरों की संज्ञा से यह सूचित कराया गया है कि—घा (९), स (७), गै, (३), रि (२), क (१) इन भावों से भी पत्नी (प्रथम) तथा कर (९) में तत्तत्कारक की स्थिति से शुभफल। अर्थात् ७ रसप्तमभाव में या सप्तम से नवम में-स्त्रीकारक अथवा शुभग्रह हो तो स्त्री का सुख, अन्यथा दुःख। एवं तृतीयभाव में या उससे नवम मे भ्रातृकारक या शुभग्रह हो तो भ्रातृसुख। अन्यथा क्लेश। विशेषकर यह फल उस राशि की त्रिकोण दशा अन्तर दशा में समझना। एवं प्रत्येक भाव से तत्तत्कारक द्वारा शुभाशुभ फल का आदेश करना चाहिये।

अथ जन्मकालिकचन्द्रनक्षत्रे लग्नादिद्वादशराशिदशामाह—

तारार्कांशे मन्दाद्यो दशेशः ॥२७॥

सं०—तारा चन्द्रनक्षत्रं तद्द्वादशांशे मन्दाद्यो दशेशः (लग्नादिराशिर्दशाधीशो भवतीत्यर्थः) । अर्थात् चन्द्रस्य भयातघटिका द्वादशभिः संगुण्य भभोगघटीभिर्विभज्य लब्धिराश्यादितुल्यो लग्नादिगणनया जन्मकालिकवर्तमानदशाधिपो ज्ञेयः ।

एतेन ग्रहदशास्वपि–लग्नादिद्वादशराशीनामन्तर्दशा भवन्तीत्यपि सूचितमाचार्येण ।

भा०—जन्मकालिक चन्द्रनक्षत्र के तुल्य द्वादश विभाग में लग्नादि १२ राशि दशाधिप होता है । अर्थात् "भभोग घटी में १२ राशि तो भयात घटी में क्या ?" इस अनुपात से भयात घटी को १२ से गुना कर भभोग घटी के भाग देने से लब्धि लग्नादिराशिक्रम से वर्तमान जन्मकालिक नक्षत्रदशाधीश होता है ।

इससे यह भी सूचित किया गया है कि नक्षत्र आयुर्दाय (विंशोत्तरी अष्टोत्तरी ग्रह की महादशा) में भी लग्नादि १२ राशियों की अन्तर्दशा होती है । उन अन्तर्दशा से इस ग्रन्थ के अनुसार फलादेश करना ।

तथा राशिदशा में भी नवग्रहों की अन्तर्दशा होती है इसलिये नवांश अन्तर्दशा का पर्याय है । उदाहरण आगे स्पष्ट है ।

अथैवं जन्मकालिकचन्द्रनक्षत्रदशापतिवशात् फलमाह—

तस्मिन्नुच्चे नीचे वा श्रीमन्तः ॥२८॥ स्वमित्रभे किञ्चित् ॥२९॥ दुर्गतोऽपरथा ॥३०॥

सं०—तस्मिन् (जन्मकालिकनक्षत्रान्तर्दशाधिपे) उच्चे नीचे वा स्थिते जातकाः श्रीमन्तो राजानो धनिनो वा भवन्ति । स्वमित्रभे स्वराशौ मित्रराशौ वा स्थिते सति किञ्चित् अल्पधनवन्तो भवन्तीत्यर्थः । अपरथा उक्तस्थानतोऽन्यत्र शत्रुराश्यादौ स्थिते दुर्गतो दरिद्रः स्यात् । एवं सर्वासु दशासु वर्तमानान्तर्दशापतिवशात् फलानि ज्ञेयानि ।

भा०—जन्मकालिक नक्षत्रान्तर्दशाधीश यदि अपने उच्च या नीच

में हो तो जातक पूर्ण धनवान् होता है। स्वराशि वा मित्रराशि में हो तो अल्पधनवान् होता है। अन्यथा (अर्थात् इससे भिन्न स्थान शत्रु राश्यादि में हो तो) दरिद्र होता है।

उ०—भयात-५०।१४ के एक जातीय ३०१४ को १२ से गुना कर ३६१६८ में भभोग ६०।२६ के एक जातीय ३६२६ से भाग देने से लब्ध राश्यादि ९।२९।१४।१९ गत राशि ९ वर्तमान १० वीं राशि है अतः लग्न (तुला) से दशवीं राशि (कर्क) की दशा हुई, इसलिये दशेश चन्द्रमा हुए।

अथवा—वर्तमान विंशोत्तरी नक्षत्र दशा बृहस्पति की है उसमें लग्नादि १२ राशियों की अन्तर्दशा में महादशावर्ष १६ के द्वादशांश १ वर्ष ४ मास भोग हुआ। इस क्रम से भो० लग्नादि गणना से कर्क की वर्तमान अन्तर्दशा हुई॥

अथोक्तदशायामन्तर्दशाविदशयोश्च गणनाक्रममाह—

स्ववैषम्ये यथास्वं क्रमव्युत्क्रमौ ॥३१॥ साम्ये विपरीतम् ॥३२॥ शनौ चेत्येके ॥३३॥ अन्तर्भुक्त्यंशयोरेवत् ॥३४॥

सं—यत्रान्तर्दशोपदशायाः साध्याः स 'स्व' शब्देन ज्ञेयः। यथा चन्द्रनक्षत्रे लग्नादिद्वादशराशीनां दशाः साध्या अतोऽत्र चन्द्रराशिः स्वशब्दवाच्यः। तस्य (स्वस्य) वैषम्ये विषमपदत्वे सति यथास्वं (लग्नस्य विषमसमत्वे) क्रमोत्क्रमौ लग्नस्य विषमत्वे क्रमः, लग्नस्य समत्वे उत्क्रमः। तथा स्वस्य (चन्द्राश्रितभस्य, दशाश्रयभस्य वा) साम्ये समपदत्वे सति विपरीतम्, लग्ने विषमे उत्क्रमेण, समे लग्ने क्रमेण गणना स्यादित्यर्थः। शनौ चेति एके केचित् कथयन्ति, अर्थात् यथा चन्द्रनक्षत्रवशेन वर्तमानदशेशः साधितस्तथैव शनिनक्षत्रवशादपि शनिभुक्तभोगतो दशेश प्रसाध्य फलं वाच्यमित्यन्ये कथयन्तीत्यन्यमतं प्रतिपादितमाचार्येण। अथैतस्य कुत्र प्रयोजनमिति कथयति—अन्तर्भुक्त्यंशयोः (अन्तर्दशोपदशयोः) एवद् दशाक्रमसाधनं ज्ञेयम्॥